कृष्णदास संस्कृत सीरीज १८२

श्रीमद्विट्ठलदीक्षितप्रणीता

मण्डपकुण्डसिद्धिः

[कुण्डमण्डपसिद्धिः]

पाठकोपाह्वबलदेवप्रणीत 'बलदा 'भाष्यसहित-
सान्वय 'ज्योत्स्ना 'हिन्दीव्याख्योपेता

हिन्दीव्याख्याकारः - आचार्य श्रीनिवासशर्मा

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
१८२

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्विट्ठलदीक्षितप्रणीता

मण्डपकुण्डसिद्धिः

[कुण्डमण्डपसिद्धिः]

पाठकोपाह्वबलदेवप्रणीत 'बलदा' भाष्यसहित-
सान्वय 'ज्योत्स्ना' हिन्दीव्याख्योपेता

हिन्दीव्याख्याकारः
आचार्य श्रीनिवासशर्मा

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
182

****

MAṆḌAPAKUṆḌASIDDHI

[KUṆḌAMAṆḌAPASIDDHI]

OF

Srimad Vitthala Dixit

With 'Balada' Sanskrit Commentary of
Baladeva Pathak & 'Jyotsna' Hindi Commentary

By

Acharya Srinivas Sharma

KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Publisher : Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

Oriental Publisher & Distributors
Post Box No. 1118
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
VARANASI-221001 (India)
Phone : 335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
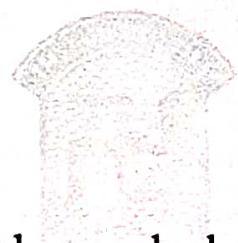
Also can be had from
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
P. Box 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : (0542) Off. 333458, Resi. : 334032 & 335020

प्रस्तावना

सृष्टि के आरम्भ से ही भारतभूमि धर्मप्रधान भूमि रही है। अनादि काल से ही इस भूमि पर अपने-अपने इष्ट देवताओं की प्रसन्नता हेतु, राष्ट्रकल्याण हेतु, जनकल्याण हेतु एवं अन्य भी विविध प्रयोजनों की सिद्धि हेतु यज्ञों को सम्पादित करने की परम्परा प्रचलित रही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के इतिहास में प्रारम्भ से ही यज्ञों का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। भारतीय मान्यता के अनुसार स्वयं यज्ञ ही यज्ञेश्वर था, विष्णुस्वरूप था। इसीलिए कहा भी गया है- **यज्ञो वै विष्णुः।**

उपर्युक्त मान्यता के रहते हुए भी व्यवहाररूप में देवताओं ने इसे साधनरूप में ही अंगीकार किया और यज्ञों के द्वारा यज्ञ का यजन किया जाने लगा; किन्तु इस अवस्था में भी भिन्नता में अभिन्नता स्पष्टतः विद्यमान रही। इसीलिए कहा गया- **यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।**

स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में प्रधान धर्म के रूप में यज्ञ को ही अंगीकार किया गया। तदनुसार ही प्रत्येक हिन्दू संस्कार की पूर्ति यज्ञसम्पादन द्वारा स्वीकार की गई एवं मानव की लौकिक तथा पारलौकिक उभयविध कामनाओं की पूर्ति के साधनरूप में भी यज्ञ ही स्वीकार किये गये। इसी धारणा को पुष्ट करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा भी गया है-

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो त्विष्टकामधुक्॥

यह यज्ञ ही अखिल ब्रह्माण्ड में भूलोकवासी मानवों तथा स्वर्लोकनिवासी देवताओं के लिए एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रमुख साधन होने के साथ-साथ दोनों ही के लिए परम श्रेयःप्राप्ति का साधनस्वरूप भी था। वाजसनेय संहिता में कहा भी गया है-

देहि मे ददामि ते नि मि धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते॥

भारतीय संस्कृति में अन्न को ही प्राणी का जीवन स्वीकार किया गया है और उस जीवनभूत अन्न की उत्पत्ति की कारणस्वरूपा वर्षा है। उस वर्षा का होना या न

होना यज्ञ के ऊपर ही आश्रित है और उस सर्वाधारभूत यज्ञ का सम्पादन भी क्रिया के द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकृत स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् में प्राणिमात्र के जीवनाधायक तत्त्व के रूप में शिखर पर यज्ञ ही अधिष्ठित है। इसी को ध्यान में रखते हुए यज्ञ की महत्ता को श्रुति, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र, तन्त्र आदि ने भी एक स्वर से स्वीकार किया है। इस यज्ञ के तीन विभाग श्रीमद्भागवत में निर्धारित किये गये हैं– 1. वैदिक, 2. तान्त्रिक और 3. मिश्र। कहा भी गया है-

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः।

इस प्रकार यज्ञों की प्रधानता होते हुए भी वर्तमान परिवेश में दर्श, पूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य, पशु, सोम आदि श्रौत यागों का सम्पादन करना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य हो गया है; फिर श्रौत यज्ञों के सम्पादन का अधिकारी भी मात्र आहिताग्नि को ही माना गया है; जैसा कि निम्न वचन से स्पष्ट है- **यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्।**

लेकिन जीवनपर्यन्त यज्ञ करना या अग्न्याधान करना आज के परिवेश में मानव के लिए सुलभ नहीं है; इसीलिए स्मृति, पुराण, तन्त्रप्रतिपादित विष्णुयाग, रुद्रयाग, रामयाग, गोपालयाग, हरिहरात्मक याग, शतचण्डी याग, सहस्रचण्डी याग, सूर्ययाग, गणेशयाग आदि यज्ञ ही ऐच्छिक और पारलौकिक दृष्टि से श्रेयस्कारक स्वीकार किये गये हैं। अधिक होताओं के सहयोग से अधिक दिनों में सम्पादित किये जाने वाले किसी भी उपास्य देव के यज्ञ का विधान भविष्योत्तर पुराण में प्राप्त होता है। ये यज्ञ मात्र यजन हेतु ही उपयोगी नहीं हैं; अपितु दान, मन्दिर, धर्मशाला, वापी, कूप, तडागादिनिर्माणात्मक सत्कार्य-सम्पादन हेतु भी आवश्यक हैं। यज्ञों के सम्पादन से मनुष्य में पवित्रता आती है, इसका प्रतिपादन करते हुए गीता में कहा भी गया है–

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।

इस प्रकार सकल श्रेयःप्राप्ति के साधनभूत यज्ञ ही हैं-यह स्पष्ट होता है। इन यज्ञों को शास्त्रप्रतिपादित रीति से सम्पन्न करने हेतु उसके अंगभूत मण्डप, कुण्ड आदि के निर्माण का पूर्ण ज्ञान होना सर्वथा आवश्यक है। इनमें से मण्डप आदि देवप्रासाद कहलाते हैं; ये मण्डपादि आरात् उपकारक होने के साथ-साथ सन्निपत्योपकारक भी हैं। इनसे सम्बद्ध खात, कण्ठ, नाभि, मेखला, योनि आदि को ही कुण्ड के नाम से जाना जाता है। वैदिक सूत्रों, पुराणों, पञ्चरात्र संहिता एवं तन्त्रग्रन्थों में मण्डप-कुण्डनिर्माण का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। इन मण्डपों के अनेक विभाग भी दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे कि श्रीविद्यार्णव तन्त्र में चौबीस हाथ से लेकर एक सौ बीस हाथ तक के मण्डप बनाने का विधान प्रतिपादित किया गया है-

विंशत्यूर्ध्वशतैर्हस्तैर्मण्डपश्चोत्तमो मतः।
चतुर्विंशतिहस्तैर्वा मण्डपं कारयेद्बुधः॥

कुण्डनिर्माण के क्रम में भी बहुविध प्रकार दिखाई देते हैं; जैसे कि-चतुरस्र, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, पञ्चकोण, षट्कोण, सप्तकोण, अष्टकोण, नवकोण, रुद्रकोण, षट्त्रिंशत् कोण तथा अष्टचत्वारिंशत् कोण। इनके अतिरिक्त सूर्य, कुन्त, असि, धनुष, मुद्गर एवं ग्रहाकृति वाले कुण्डों का विधान भी प्राप्त होता है। जैसा कि कहा भी गया है-

चतुरस्रं तथा वृत्तं षट्कोणं चाष्टकोणकम्।
त्रिकोणमष्टपत्राभं नवकोणं त्रिकोणकम्॥
सूर्यकुन्तासिशृङ्गारधनुर्मुद्गर ग्रहाकृतिः।
मण्डपास्तत्र कर्त्तव्याः कुण्डान्यपि विशेषतः॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्तमान में मण्डप और कुण्ड के निर्माण को प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थ बहुतायत में उपलब्ध है; फिर भी इनका निर्माण एक अत्यन्त ही जटिल कार्य है। वर्त्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति किसी भी करणीय कार्य की सरलतम विधि को जानने हेतु उत्सुक रहता है और इस आकांक्षा की पूर्ति श्री विट्ठल दीक्षितप्रणीत प्रकृत अनुपम ग्रन्थ 'मण्डपकुण्डसिद्धि' द्वारा सहज में ही हो जाती है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने अनेक भ्रामक विषयों को भी पूर्णतः निर्णीत किया है, जो कि परमोपयोगी है। ग्रन्थकार ने दस हाथ से प्रारम्भ कर बीस हाथ तक के मण्डपों एवं चतुरस्र, योनि, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, वृत्त, षडस्र, पद्म तथा अष्टकोण कुण्डों का ही प्राशस्त्य स्वीकार किया है। इस ग्रन्थ की रचना शक संवत् १५४१ (सन् १६२०) में की गयी है, जैसा कि ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक से भी स्पष्ट है-

शशियुगतिथिगण्ये याति शाके वरेण्ये विभवशरदि रम्ये मासि शस्ये तपस्ये।
शशधरमृतिऋक्षेऽमुष्यपक्षे वलक्षे कमलनयनतिथ्यां भानुमद्वारवत्याम्।

यह ग्रन्थ विषयानुसार तीन अध्यायों में विभक्त है; उनमें से प्रथम अध्याय में मण्डपनिर्माण की विधि प्रतिपादित की गई है। दूसरे अध्याय में कुण्ड निर्माण की विधि एवं उनका माप-स्थान आदि स्पष्ट किया गया है तथा अन्तिम तीसरे अध्याय में कुण्डों के अलंकरणभूत खात-मेखला-नाभि-योनि आदि का निर्माण और उनकी स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार मण्डप एवं कुण्डनिर्माण सम्बन्धी जानकारी को समग्र रूप में उपलब्ध कराने में यह ग्रन्थ पूर्णतः समर्थ है।

प्रकृत संस्करण

मण्डपकुण्डसिद्धि वर्तमान में **'कुण्डमण्डपसिद्धि'** के नाम से हिन्दी टीका के साथ उपलब्ध होती है, लेकिन एक तो वे ग्रन्थ ही पूर्ण नहीं हैं और दूसरे उनकी टीकायें भी विषय को पूर्णत: स्पष्ट करने में असमर्थ हैं। साथ ही इन संस्करणों में संस्कृत टीकाओं का भी सर्वथा अभाव है, जिससे कि ये संस्करण पूर्णत: उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाये हैं। इन्हीं कमियों को ध्यान में रखकर प्रकृत संस्करण को आचार्य बलदेव पाठकप्रणीत **बलदा** भाष्य से अलंकृत करने के साथ-साथ **ज्योत्स्ना** हिन्दी व्याख्या से विभूषित किया गया है। संस्कृत भाषा में निबद्ध बलदा भाष्य एवं ज्योत्स्ना हिन्दी व्याख्या— दोनों ही ग्रन्थ के विषय को पूर्णत: स्पष्ट करने में सहायक हैं।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस संस्करण में मण्डप एवं कुण्डों को चक्रों के द्वारा स्पष्ट करने के साथ-साथ उनसे सम्बन्धित सारिणियाँ भी दी गयी हैं, जिससे कि उनके स्वरूप-निर्धारण में कोई शंका-प्रशंका की सम्भावना ही न रहे।

इस अनुपम ग्रन्थ को यजन-याजन के जिज्ञासु लोगों की जिज्ञासा-शमनार्थ प्रकाशित कर कृष्णदास अकादमी, वाराणसी ने एक महनीय कार्य किया है, अत एव उसके व्यवस्थापकद्वय शतश: धन्यवादार्ह हैं। आशा एवं विश्वास है कि अभीप्सु लोगों के लिए यह संस्करण नितान्त उपयोगी सिद्ध होगा। साथ ही विज्ञजनों से यह भी निवेदन है कि—

गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना:॥

अनन्तचतुर्दशी, 2059 वि0 सं0 — **श्रीनिवास शर्मा**
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

चक्रानुक्रमणिका

❖❖❖❖❖

सारिणी-तालिका

❖❖❖❖❖

॥श्री:॥

श्रीमद्विट्ठलदीक्षितप्रणीता

मण्डपकुण्डसिद्धिः

[कुण्डमण्डपसिद्धिः]

पाठकोपाह्वबलदेवप्रणीत'बलदा'भाष्यसहित-

सान्वय'ज्योत्स्ना'हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमोऽध्यायः

(मण्डपसिद्धिप्रकरणम्)

ग्रन्थारम्भे मङ्गलाचरत्याचार्यः शार्दूलविक्रीडितवृत्तेन-

गाढं ध्वान्तमनेकभानुजठरे राजत्कलाधारिणि
प्रोदञ्चच्छफरीयुगं दरदलत्पद्मेऽणुहीरावलिम्।
स्वर्णोत्तुङ्गगिरिद्वयाधरचरीं दीनां कलिन्दात्मजाम्
पश्याश्चर्य्यमिदं शिवामिति वदन् स्मेरः शिवः पातु वः॥१॥

अन्वयः- (हे गौरि!) अनेकभानुजठरे गाढं ध्वान्तम्, राजत्कलाधारिणि (पूर्णचन्द्रमसि) प्रोदञ्चत् शफरीयुगम्, दरदलत्पद्मे अणुहीरावलिम्, स्वर्णोत्तुङ्गगिरिद्वयाधरचरीं दीनां कलिन्दात्मजाम्, इदम् आश्चर्यं पश्य- इति शिवां वदन् स्मेरः शिवः वः पातु॥१॥

❄ बलदाभाष्यम् ❄

स्मयत इति स्मेरः, स्मितमुखः शिवो वो युष्मान् पातु रक्षतु। किं कुर्वन्- गौरीम्प्रतीति वदन्। इति किमित्यत आह- अये गौरीदं वक्ष्यमाणमाश्चर्यं कौतुकम्पश्यावलोकय। अनेकसंख्याकानां भानूनां जठरे कुक्षौ (पिचण्डं कुक्षी जठरोदरमित्यमरः) गाढं दृढं (तीव्रैकान्तनितान्तानि

गाढ़वाढ़दृढ़ानि चेत्यमरः) ध्वान्तमन्धकारम्पश्य– एतन्मिषेण गौरीमस्तक-स्थरत्नखचितमुकुटान्तर्गतकेशवर्णनम्। राजन्तीनां स्फुरन्तीनां कलानां षोड़शभागानां (कलास्तु षोड़शो भाग इत्यमरः) धारिणि दधाने चन्द्रमसीति शेषः प्रकर्षेण उदिति वितर्केण अञ्चति गच्छतीति (अञ्चु गतिपूजनयोः) तथाभूतं सफर्योर्मत्स्ययोर्युगं द्वयम्पश्य– एतन्मिषेण चन्द्रमुख्या गौर्या नेत्रद्वयवर्णनम्। किञ्च दरमीषत् विकसच्च तत्पद्मञ्च तथाभूत ईषद्विकसित-पद्मेऽणूनामतिसूक्ष्माणां हीराणामालिः पंक्तिः ताम्पश्य– एतन्मिषेण स्मित-गौरीमुखपद्मान्तर्गतदन्तपंक्तिवर्णनम्। किञ्च स्वर्णस्य स्वर्णमयस्य उतुङ्गम् उन्नतं यद्गिरिद्वयं पर्वतद्वयं तस्याधरे अधस्तात् (अधस्तादपि चाधर इत्यमरः, चरति गच्छत्यत एव दीनां कृशां कलिन्दात्मजां यमुनां पश्य– एतन्मिषेण गौर्या गौरपृथुरङ्गस्तनाधारगतरोमावलीवर्णनम्।।१।।

❄ ज्योत्स्ना ❄

नारायणं नमस्कृत्य पराङ्कशगुरुं तथा।
कुरुते श्रीनिवासोऽयं लीलादेव्यभिलाषजः।।
कुण्डमण्डपसिद्ध्याख्यं ज्योत्स्नासंवलितं सुधीः।
याजकानां सुबोधाय यज्ञसम्पादनाय च।।

(हे गौरि!) आश्चर्यभूत अनेक सूर्यों के उदित रहते हुए भी अत्यन्त घने इस अन्धकार को, शोभायमान कला को धारण करने वाले (पूर्ण चन्द्रमा) में (चिपकी हुई) इन दो चंचल मछलियों को, थोड़े-थोड़े विकसित कमल में अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् छोटी-छोटी हीरे की इन पंक्तियों को एवं सुवर्णसदृश ऊँचे-ऊँचे दो पर्वतों के नीचे चलने के कारण दीन अर्थात् दुर्बल इस यमुना नदी को देखो– इस प्रकार शिवा अर्थात् पार्वती से कहते हुए मन्द-मन्द हास्ययुक्त मुख वाले भगवान् शिव हमारी रक्षा करें।।

भगवान् शङ्कर को वक्ता बनाकर कवि के कहने का आशय यह है कि भगवती पार्वती द्वारा अपने मस्तक पर धारण किया गया मुंकुट उदित अनेकों सूर्यों के समान पूर्ण रूप से देदीप्यमान है, फिर भी उसके मध्य में विद्यमान पार्वती भी अलका-वलियाँ प्रगाढ़ अन्धकार का आभास करा रही हैं- यह परम आश्चर्य का विषय है। इस प्रकार उदित सूर्यों के बहाने पार्वती द्वारा धारण किये गये देदीप्यमान मुकुट का एवं अन्धकार के बहाने पार्वती भी अलकावलियों का वर्णन करना ही यहाँ कवि को अभीष्ट है।

पूर्ण चन्द्र में चञ्चल दो मछलियों के बहाने से पार्वती के मुखमण्डल और नेत्रयुग्मों का वर्णन कवि को अभीष्ट है। यहाँ पूर्णचन्द्र से तात्पर्य है- पार्वती का मुखमण्डल और मछलियों से तात्पर्य है- उनके दोनों नेत्र।

ईषद्विकसित कमल में सूक्ष्म हीरे की पंक्तियों को कहने से कवि को पार्वती के मुखकमल के मध्य स्थित उनकी दन्तपंक्तियों का वर्णन करना ही अभीष्ट है। आशय यह है कि पार्वती का मुख कमल के समान है, जिसके मन्द हास्ययुक्त होने से थोड़े विकसित होने के कारण उनकी दन्तपंक्ति दिखलाई दे रही है, जो कि कमल के मध्य स्थित स्वच्छ शुभ्र हीरे की पंक्ति के समान जान पड़ रही है।

इसी प्रकार सुवर्णसदृश उन्नत पर्वतों से कवि का तात्पर्य पार्वती के उन्नत स्तनों की रम्यता को प्रकट करना है। उन उन्नत स्तनों के नीचे स्थित काली-काली रोमावलियाँ सुवर्णपर्वत (सुमेरु पर्वत) के नीचे स्थित अत्यन्त दुर्बल यमुना नदी के समान दिखलाई दे रही हैं। यही कहना कवि को अभीष्ट है।

इस प्रकार भगवान् शंकर के कथन के व्याज से भगवती पार्वती के मुकुट एवं केशकलाप, उनके मुखकमल एवं नयनयुग्म, उनकी दन्तपंक्तियाँ और उनके उन्नत स्तन तथा उसके नीचे स्थित रोमावलियों का वर्णन करते हुए प्रसन्नवदन भगवान् शंकर को नमस्कार प्रदर्शित कर ग्रन्थकर्त्ता द्वारा प्राचीन परम्परानुसार ग्रन्थ के आरम्भ में (नमस्कारात्मक) मङ्गलाचरण किया गया है।।१।।

स्वाख्यापूर्वकं ग्रन्थनामोपजातिछन्दसाह—

कृष्णात्रिगोत्रे नितराम्पवित्रे पवित्रकर्माऽजनि बूवशर्म्मा।
तत्सूनुना विट्ठलदीक्षितेन विरच्यते मण्डपकुण्डसिद्धिः।।२।।

अन्वयः- नितरां पवित्रे गोत्रे पवित्रकर्मा बूवशर्मा अजनि। तत्सूनुना विट्ठलदीक्षितेन मण्डकुण्डसिद्धिः विरच्यते।।२।।

(बलदाभाष्यम्) **पवित्रं शुद्धं, कर्म्म यजनयाजनादिकं यस्यासौ वूवनामको ब्राह्मणः नितराम् अतिशयेन पवित्रे शुद्धे कृष्णात्रिगोत्रेजनि प्रादुरभूत्। तस्य बूवशर्म्मणः सूनुना पुत्रेण विट्ठलदीक्षितेन मण्डपकुण्डयोः सिद्धिर्यस्मिन्नसौ ग्रन्थो विरच्यते, क्रियत इत्यर्थः।। २।।**

ज्योत्स्ना- अतिशय पवित्र कृष्णात्रि गोत्र में (यजन-याजनादि) पवित्र कर्म करने वाले **बूव शर्मा** ने जन्म ग्रहण किया। उन बूव शर्मा के पुत्र विट्ठल दीक्षित द्वारा **मण्डपकुण्डसिद्धि** नामक ग्रन्थ की रचना की जा रही है।

प्रकृत श्लोक में कवि ने अपना स्वयं का परिचय उपस्थापित किया है, जिससे स्पष्ट है कि ये कृष्णात्रिगोत्र में उत्पन्न हुए थे और इनके पिता का नाम वूव शर्मा था।।२।।

कुण्डादिविवक्षुस्तावद्धस्तादिपरिभाषां
विपरिताख्यानक्यनुष्टुब्भ्यामाह–

कृतोर्ध्वबाहोः समभूगतस्य कर्त्तुः शरांशः प्रपदोच्छ्रितस्य।
यो वा सहस्तोऽस्य जिनांशकोऽपि स्यादङ्गुलं तत्तदिभांशको यः।।३।।
यवो यूका च लीक्षा च वालाग्रश्चैवमादयः।
कृतमुष्टिकरो रत्निररत्निरकनिष्ठिकः ।।४।।

अन्वयः– कृतोर्ध्वबाहोः समभूगतस्य वा प्रपदोच्छ्रितस्य कर्तुः यः शरांशः स हस्तः स्यात्। अस्य जिनांशकोऽपि अंगुलं (स्यात्), तत्तत् इभांशको यः स यवः (स्यात्), च यूका, च लिक्षा, च बालाग्रम्, एवम् आदयः स्युः। कृत-मुष्टिकरः रत्निः अकनिष्ठिकः अरत्निः स्यात्।। ३-४।।

(बलदाभाष्यम्) **कृतौ ऊर्ध्वौ बाहू येन तस्य समायां मुकुरोदरसन्निभायां भुवि पृथिव्यां गतस्य समपादतया स्थितस्य वा प्रपदं पादाग्रं तेन भुवमालम्ब्योच्छ्रितस्य कर्त्तुर्यजमानस्य यः शरांशः पञ्चमांशः स हस्तः। तथा च कात्यायनः –**

यजमानेनोर्ध्वबाहुना प्रपदोच्छ्रितेन समस्थितेन वा।। इति।

अस्य हस्तस्य जिनांशकश्चतुर्विंशत्यंशः अपीति निश्चयेन अंगुलं स्यात्। तस्यांगुलादेर्य इभांशकः अष्टमांशः स यवादिकः स्यात्। तद्यथा अंगुलस्याष्टमांशो यवः, यवस्याष्टमांशो यूका, तस्या अष्टमांशो लीक्षा, तस्या अष्टमांशो वालाग्रम्। एवममुना प्रकारेण आदयोऽर्थाऽद्रथरेण्वादिसंज्ञा ज्ञेया। यथा वालाग्रस्याष्टमांशो रथेरणू, रथेरणोरष्टमांशः त्रसरेणुः, त्रसरेणोरष्टमांशः परमाणुरिति। तथा चादित्यपुराणे –

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते।।
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो योऽष्टौ स्युः परमाणवः।
त्रसरेण्वस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु संस्मृतः।।
रथरेण्वस्तु ते ह्यष्टौ वालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः।
वालाग्रं त्वष्टलीक्षास्तु यूका लीक्षाष्टकं स्मृतम्।
अष्टौ लीक्षायवं प्राहुरंगुलन्तु यवाष्टकम्।।

कृता मुष्टिर्येन स चासौ करः मुष्टिबद्धकर इत्यर्थः; रत्नीरत्निसंज्ञकः

स्यात्। सा त्वेकविंशत्यंगुलात्मिका तथा अकनिष्ठिको मुक्तकनिष्ठिकः कर अरत्निरर्थादरत्निसंज्ञः स्यात्सा तु द्वाविंशत्यंगुलात्मिका। तथोक्त-ञ्चादित्यपुराणे-

रत्निस्त्वंगुलपर्वाणि विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः।
अरत्निरकनिष्ठः स्यात्षोड़शांशवियुक्करः।। **इति।।३-४।।**

ज्योत्स्ना- हस्तादिमान का निरूपण करते हुए कहते हैं कि दोनों हाथों को ऊपर की ओर उठाये हुए समतल भूमि पर पैरों को बराबर रखकर अथवा पैरों के अग्रभाग अर्थात् पैर की अंगुलियों के सहारे खड़े यजमान के पाँचवें भाग की जितनी लम्बाई होती है वही **हाथ** की लम्बाई का मान होता है। इसी को स्पष्ट करते हुए कात्यायन ने भी कहा है-

यजमानेनोर्ध्वबाहुना प्रपदोच्छ्रितेन समस्थितेन वा।

तात्पर्य यह है कि समतल भूमि पर ऊपर की ओर हाथ उठाकर खड़े यजमान के पैर के अंगूठे से लेकर ऊर्ध्वाभिमुख हाथ की मध्यमा अंगुली तक नाप कर उसके पाँच भाग करने पर एक भाग की जो लम्बाई आती है वही एक हाथ की लम्बाई मानी जाती है। इसी परिमित हाथ से मण्डप, कुण्ड, स्तम्भ, ध्वजा आदि का मापन किया जाता है।

हाथ की लम्बाई का चौबीसवाँ भाग **अंगुल** का मान होता है और एक अंगुल के मान का आठवाँ भाग **यव** कहलाता है। यव के मान का आठवाँ भाग **यूका**, यूका का आठवाँ भाग **लिक्षा** और लिक्षा का आठवाँ भाग **बालाग्र** कहलाता है। इसी प्रकार से अन्य (रथरेणु आदि) को भी जानना चाहिए। जैसे कि बालाग्र का आठवाँ भाग रथरेणु (रथ के पहिये के नीचे की मिट्टी), रथरेणु का आठवाँ भाग **त्रसरेणु** और त्रसरेणु का आठवाँ भाग **परमाणु** होता है। इसी को स्पष्ट करते हुए आदित्यपुराण में कहा भी गया है-

**जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते।।
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो योऽष्टौ स्युः परमाणवः।
त्रसरेणवस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु संस्मृतः।।
रथरेणवस्तु ते ह्यष्टौ बालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः।
बालाग्रं त्वष्टलीक्षास्तु यूका लीक्षाष्टकं स्मृतम्।।
अष्टौ लीक्षायवं प्राहुरंगुलन्तु यवाष्टकम्।।**

रत्नि किसे कहते हैं- इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यजमान के मुट्ठी

बाँधे हुए हाथ को **रत्नि** कहा जाता है, जो इक्कीस (२१) अंगुल परिमाण का होता है और उपर्युक्त मुट्ठी बँधे हाथ से केवल कनिष्ठिका अंगुली को यदि मुक्त कर दिया जाय तो उसे **अरत्नि** के नाम से जाना जाता है। इसका परिमाण बाइस (२२) अंगुल होता है। इस सन्दर्भ में आदित्यपुराण में कहा भी गया है-

रत्निस्त्वंगुलपर्वाणि विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः।
अरत्निरकनिष्ठः स्यात्षोड्शांशवियुक्करः।।३-४।।

दिक्साधनं विवक्षुस्तावदितिकर्त्तव्यतां स्रग्धरयाह–

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्रीं दहनखननसंप्लावनैः संविशोध्य
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः।
पुण्याहं कूर्मशेषौ क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे
वारे तिथ्यां च कुर्यात्सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम्।।५।।

अन्वयः- पूर्वं धरित्रीं ज्ञात्वा, पश्चात् दहनखननसम्प्लावनैः संविशोध्य मुकुरजठरवत् समानां कृत्वा शुद्धे वारे तिथ्यां च द्विजेन्द्रैः पुण्याहं वाचयित्वा, कुसुमाद्यैः कूर्मशेषौ क्षितिमपि समाराध्य मण्डपार्थं सुरपतिककुभः साधनं कुर्यात्।। ५।।

(बलदाभाष्यम्) **पूर्वमादौ धरित्रीं पृथ्वीं ज्ञात्वा इयम्भूर्मण्डपादिकर्त्तुं योग्या न वेति विचार्य। तथोक्तं मुहूर्तमार्त्तण्डे–**

स्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यन्त्वसत्स्फाटितम्।
स्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधा स्वादुः कटुस्तिक्तका।
काषाया घृतशोणितान्नमदिरागन्धा शुभा विप्रतः।
सद्मप्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गम-
श्चेत्तद्दिग्गतमादिशेत्तु हंपयैः शल्यं सुधीर्मध्यतः।। **इति।**

अन्यच्च शारदातिलके–

ईशकोणप्लवा सा च कर्तुः श्रीदा सुनिश्चितम्।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तरप्लवा।
शेषकाष्ठाप्लवा भूमिर्धनायुर्गृहनाशिनी।।
ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया शरसंकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला।।

इत्यादिना ज्योतिर्विदा कर्मयोग्यां शुद्धां भूमिं ज्ञात्वा पश्चादनन्तरं

दहनं अग्निना भस्मीकरणम्, एतेन तुषकण्टकादेर्नाशो जायते। खननं प्रसिद्धम्, एतेन वल्मीकपाषाणादेर्नाशो जायते। सम्यक् प्लावनं हलादिना चालनम्, एतेन विदीर्णाया: भूमेर्विवरादीनां नाशः समता च जायते। यतः शारदातिलके–

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकारोहिणी तथा।
दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्त्तुरायुर्धनापहा।। इति

अत एतैर्भूमिं संशोध्य मुकुरजठरवत् दर्पणोदरवत् समानां निम्नोन्नतरहितां कृत्वा द्विजेन्द्रैः वेदपाठिभिर्ब्राह्मणैर्यतस्त एव ब्राह्मणेषु श्रेष्ठाः पुण्याहं वाचयित्वा कुसुमाद्यैः पुष्पाद्यैः पञ्चोपचारैः षोडशोपचारैर्वा कूर्मशेषौ कच्छपशेषनागौ क्षितिं पृथिवीम्,अपिशब्दाद्वाराहं समाराध्य सम्पूज्य शुद्धे वारे शुद्धायां तिथ्याञ्च अर्थाज्ज्यौतिःशास्त्रोक्ते मुहूर्त्ते मण्डपार्थ मण्डपनिर्माणाय सुराणां देवानाम्पतिरिन्द्रस्तस्य ककुभः प्राचीदिशः साधनं कुर्यादिति।। ५।।

ज्योत्स्ना– दिक्साधन की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः भूमि का ज्ञान करना चाहिए अर्थात् यह भूमि मण्डप आदि के निर्माणयोग्य है अथवा नहीं– इसका विचार करना चाहिए। भूमि की परीक्षा के सन्दर्भ में मुहूर्तमार्तण्ड में इस प्रकार कहा गया है–

स्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यन्त्वसत्स्फाटितम्।
श्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधा स्वादुः कटुस्तिक्तका
काषाया घृतशोणितान्नमदिरागन्धाशुभा विप्रतः।।
सद्मप्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्णादिवर्णोद्गम–
श्चेत्तद्दिग्गतमादिशेत्तु हपयैः शल्यं सुधीर्मध्यतः।।

शारदातिलक में भूमि के प्रकार को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–

ईशकोणप्लवा सा च कर्तुः श्रीदा सुनिश्चितम्।।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तरप्लवा।
शेषकाष्ठाप्लवा भूमिर्धनायुर्गृहनाशिनी।।
ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया शरसंकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला।।

इस प्रकार भूमि का निर्धारण कर उसे अग्नि द्वारा शुद्ध करना चाहिए अर्थात् उस भूमि पर अग्नि प्रज्ज्वलित करनी चाहिए, जिससे उस पर स्थित कण्टक, तृण

आदि नष्ट हो जायँ और वह भूमि पूर्णतः साफ-सुथरी हो जाय। तदनन्तर उस भूमि का खनन करना चाहिए अर्थात् उस भूमि को खोद कर उसे समतल बना देना चाहिए और अन्त में उस भूमि को जल से आप्लावित कर देना चाहिए, जिससे कि भूमि में स्थित छिद्र आदि में मिट्टी अच्छी प्रकार से भर जाय और वह पूर्ण रूप से ठोस एवं समतल हो जाय। जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है-

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकारोहिणी तथा।
दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्त्तुरायुर्धनापहा।।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों विधियों से निर्धारित भूमि का इस तरह शोधन करना चाहिए, जिससे कि वह पूर्णतः समतल एवं शीशे के मध्यभाग के समान अत्यन्त चिकनी हो जाय। तदनन्तर शुभ वार एवं शुभ तिथि में श्रेष्ठ ब्राह्मणों से अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन सम्पन्न कराकर पुष्प आदि पूजन-सामग्रियों से कच्छप, शेषनाग एवं उपर्युक्त निर्धारित भूमि की भी पूजा करके मण्डप-निर्माणार्थ पूर्वादि दिशाओं का साधन करना चाहिए। इस सन्दर्भ में शारदातिलक में इस प्रकार कहा गया है-

नक्षत्रराशिवाराणामनुकूले शुभेऽहनि।
ततो भूमितले शुद्धे तुषाङ्गारविवर्जिते।
पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्।।

मत्स्यपुराण में भी इसका विवेचन करते हुए कहा गया है कि-

वाराहं कूर्मशेषौ च क्षितिं चैव विधानतः।
पूजयेद्वास्तुकार्येषु विधिना साधकोत्तमः।।५।।

स्थूलपूर्वापरसाधनमुपजातिविपरीताख्यानकीभ्यामाह-

नृपाङ्गुलैः सम्मितकर्कटेन सूत्रेण वा वृत्तवरं विलिख्य।
रव्यंगुलं शंकुममुष्य मध्ये निवेशयेत्खाक्षिमितांगुलीभिः।।६।।
चतसृभिश्चापि ऋजूत्तमाभिः संस्पृष्टशीर्षन्तु समेषिकाभिः।
तच्छङ्कुभा यत्र विशेदपेयाद्वदेत्क्रमात्ते वरुणेन्द्रकाष्ठे।।७।।

अन्वयः- नृपाङ्गुलैः सम्मितकर्कटेन सूत्रेण वा वृत्तवरं विलिख्य अमुष्य मध्ये चतसृभिः साक्षिमितांगुलीभिः ऋजूत्तमाभिः तु समेषिकाभिः संस्पृष्टशीर्षं रव्यंगुलं शंकुं निवेशयेत्। तत् शंकुभा यत्र विशेत् (यत्र च) अपेयात् ते क्रमात् वरुणेन्द्रकाष्ठे वदेत्।। ६-७।।

(बलदाभाष्यम्) **नृपांगुलैः सम्मितकर्कटेन अर्थाद् व्यासार्धेन वा अथवा सूत्रेणैतदुक्तम्भवति षोड़शांगुलसूत्रस्यैकमग्रमेकेन हस्तेन स्थिरं कृत्वा**

धृतापरप्रान्तस्यान्यहस्तस्य भ्रामणेन वृत्तवरमुत्तमं वृत्तं विलिख्य। अमुष्यास्य वृत्तस्य मध्ये केन्द्रबिन्दौ चतसृभिः खाक्षिमितांगुलीभिर्विंशत्यंगुलपरिमिताभिः ऋजुभिः सरलाभिरुत्तमाभिर्दृढ़ाभिः समेषिकाभिरेतदुक्तम्भवति परिधेस्तुल्यं चतुर्विभागं कृत्वा प्रतिभागमेकैकं कीलकं निखनेदनन्तरं प्रतिकीलकं पूर्वोक्तलक्षणोपेताश्चतस्रः पट्टिकां निवध्य ताभिरपरप्रान्तैः संस्पृष्टशीर्ष-मर्थात्तासामपरप्रान्तं शंकुशीर्षे निधाय एवंकृते कर्णसमत्त्वाच्छंकुसमत्वं भवेदेवम्भूतं रव्यंगुलं द्वादशांगुलं शंकुं निवेशयेत्स्थापयेत्। तस्य शङ्कोर्भा छाया यत्र बिन्दौ प्रविशेत्प्रवेशं करोति यत्र चापेयान्निर्गच्छेत् क्रमात्ते वरुणेन्द्रकाष्ठे पश्चिमप्राचीदिशौ वदेत्कथयेदित्यर्थः। सूर्योदये छायाया अनन्तत्त्वात्तदग्रं पश्चिमदिशि वृत्तबहिर्गतमासीदनन्तरं यथा यथा रविः क्षितिजादुपरि गच्छेत्तथा तथा सङ्कोच्यमाना छायाल्पा स्याद्यदा तु षोड़शांगुल-समा तदा पश्चिमदिशि परिधौ कुत्रचिद्विन्दौ प्रविशति तत्र वरुणदिगेवं मध्याह्नादनन्तरं सूर्यस्य पश्चिमदिक्स्थत्त्वाद् वृद्ध्युन्मुखी छाया पूर्वदिशि गच्छेद्यदा तु षोड़शांगुलतुल्या स्यात्तदा पूर्वदिशि कुत्रचिद्विन्दौ परिधिं भित्वा बहिरपेयात्तत्रेन्द्रदिगिति सर्वं निरवद्यम्।। ६-७।।

ज्योत्स्ना- मण्डपकुण्ड का निर्माण करने से पूर्व दिक्साधन करना एक आवश्यक कर्तव्य है, क्योंकि दिक्साधन न करने से **दिग्मूढ़के स्यान्मृतिः** वचन के अनुसार करणीय यज्ञ में विघ्न उपस्थित होते हैं; अतः पूर्वकथित रीति से शोधित भूमि पर किये जाने वाले सामान्यतया पूर्वापर दिक्साधन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सोलह अंगुल के परकाल अथवा सोलह अंगुल की रस्सी से एक गोलाकार वृत्त बनाकर उसके मध्य भाग में बारह अंगुल का एक नोकदार लकड़ी का कील गाड़ कर उस कील के ऊपर बीस-बीस अंगुल की चार सीधी मजबूत लकड़ियाँ उस गोले को चार भाग करते हुए चारो तरह लगा दे, लेकिन यह ध्यान रखे कि वे चारो लक-ड़ियाँ मध्य में स्थापित कील को स्पर्श करती रहनी चाहिए। तत्पश्चात् उस मध्यभाग स्थित लकड़ी की छाया प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न से पूर्व तक निर्मित गोलाकार वृत्त के जिस भाग में प्रवेश करे उस भाग को चिह्नित कर दे, उसे ही पश्चिम दिशा जानना चाहिए। तदनन्तर मध्याह्न के पश्चात् और सायंकाल के पूर्व उस वृत्त के जिस भाग से मध्यस्थित लकड़ी की छाया बाहर की ओर निकले उस भाग को चिह्नित कर दे। उसे ही पूर्व दिशा जानना चाहिए। यही पूर्व और पश्चिम दिशा को ज्ञात करने का सामान्य प्रकार है।। ६-७।।

सूक्ष्मप्राचीसाधनं शालिन्याह–

कर्के कीटे गोमृगे यूकया सा द्वाभ्यां चाल्या सिंहकुम्भत्रिकेऽपि।
यां वै काष्ठां भानुमान् याति तस्यां चाल्या द्वन्द्वे कार्मुके चालनं न॥८॥

अन्वयः– कर्के कीटे गोमृगे यूकया सिंहकुम्भत्रिकेऽपि द्वाभ्यां सा चाल्या, वै भानुमान् यां काष्ठां याति तस्यां चाल्या, द्वन्द्वे कार्मुके चालनं न (भवति)॥ ८॥

(बलदाभाष्यम्) **कर्के कर्कसंक्रान्तौ कीटे वृश्चिकसंक्रान्तौ गो वृषो मृगो मकरस्तयोः संक्रान्तौ च यूकयैकया यूकया। सिंहः प्रसिद्धः कुम्भोऽपि प्रसिद्धः, स एव ताभ्यां त्रिकेऽर्थात्सिंहकन्यातुलकुम्भमीनमेषसंक्रान्तौ द्वाभ्यां यूकाभ्यां सा पूर्वसाधिता प्राची चाल्या स्थानान्तरं नेयेत्यर्थः। कस्यां दिशि चाल्येत्यतश्चालनदिशमाह– वै इति निश्चयेन भानुमान् रविर्यां काष्ठां दिशं अयनवशेन याति गच्छति तस्यां दिशि चाल्या। किञ्च द्वन्द्वे मिथुने कार्मुके धनुषि च चालनं न स्यात्॥ ८॥**

ज्योत्स्ना– पूर्वश्लोक से पूर्व और पश्चिम दिशा का सामान्यतया साधन करने के पश्चात् प्रकृत श्लोक द्वारा उनके सूक्ष्म साधन की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कर्क, वृश्चिक, वृष और मकर राशिस्थित सूर्य में (सूर्य जब उत्तरायण रहें तो उत्तर की ओर और दक्षिणायन सूर्य हों तो दक्षिण की ओर) एक यूका; तथा सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ और मीन राशिस्थित सूर्य में दो यूका चालन करने से अर्थात् पूर्व-वर्णित गोलाकार वृत्त में स्थापित चिह्न से दो यूका हटकर चिह्न स्थापित करने से वे चिह्न ही पूर्व और पश्चिम दिशा के वास्तविक बोधक होते हैं। मिथुन और धनु राशिस्थित सूर्य में पूर्वस्थापित चिह्न का चालन नहीं करना चाहिए अर्थात् मिथुन और धनु राशिस्थित सूर्य के रहने पर पूर्वकथित रीति के अनुसार जिस दिशा को चिह्नित किया गया है वही वास्तविक पूर्व एवं पश्चिम दिशा होती है॥८॥

उदग्दक्षिणदिशोः साधनं शालिन्याह–

रज्जुं द्विघ्नां मध्यचिह्नां सपाशां प्राचीशङ्कौ पश्चिमे चापि दत्वा।
कर्षेद्धीमान्दक्षिणे चोत्तरे च तच्चिह्ने स्याद्दक्षिणा चोत्तरा दिक्॥९॥

अन्वयः– धीमान् द्विघ्नां मध्यचिह्नां सपाशां रज्जुं (कृत्वा) प्राचीशङ्कौ पश्चिमे चापि दत्त्वा दक्षिणे उत्तरे च कर्षेत्। तत् चिह्ने दक्षिणा उत्तरा च दिक् स्यात्॥ ९॥

(बलदाभाष्यम्) धियो विद्यन्तेऽस्मिन्निति धीमान् बुद्धिमान् कुण्डमण्डपादिकरणे यावान् विस्तारस्तद्द्विगुणितां यथा षोडशहस्तमण्डपे द्वात्रिंशद्धस्तमितां मध्येऽर्धभागे चिह्नाम् अङ्कितां सपाशां पाशद्वयोपेतां रज्जुं शड़कादिनिर्मितं डोरकमित्यर्थः, कृत्वेति शेषः। तत्पाशद्वयं प्राच्यां पूर्वदिशि यः शंकुः कीलकस्तस्मिन् च पुनः पश्चिमे पश्चिमदिश्यपि शब्दाद्यः शंकुस्तस्मिन्दत्वा प्रोतं कृत्वा पूर्वाङ्कितार्धचिह्नं धृत्वेति शेषः। दक्षिणे दक्षिणदिशि चात्पुनरुत्तरे उत्तरदिशि चकारान्निश्चयेन कर्षेत्। तच्चिह्ने तदर्धाङ्कितभूमौ दक्षिणा च पुनरुत्तरा दिक् स्यात्।। ९।।

ज्योत्स्ना- पूर्व और पश्चिम दिशा का साधन स्पष्ट करने के पश्चात् प्रकृत श्लोक द्वारा उत्तर और दक्षिण दिशा के साधन का प्रकार स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि बुद्धिमान् आचार्य को जितने बड़े मण्डप का निर्माण करना हो उससे दुगुनी लम्बाई की एक रस्सी लेकर उसके मध्य में एक गाँठ देकर दोनों छोरों पर फन्दा बना दे। रस्सी के एक ओर के फन्दे को पूर्व दिशा की ओर स्थापित कील में तथा दूसरी ओर के फन्दे को पश्चिम दिशा की ओर स्थापित कील में फसाने के पश्चात् मध्य में दिये गये गाँठ वाले स्थान को पकड़कर दक्षिण एवं उत्तर की ओर रस्सी को खींचे। ऐसा करने पर दक्षिण की ओर जहाँ तक गाँठ वाला भाग जाय वहाँ दक्षिण दिशा एवं उत्तर की ओर खींचने पर जहाँ तक गाँठ वाला भाग जाय वहाँ उत्तर दिशा की कल्पना कर दोनों ही चिह्नों पर कील स्थापित कर देना चाहिए। इस प्रकार दक्षिण और उत्तर दिशा स्पष्ट हो जाती है।।९।।

प्रकारान्तरेण दिक्साधनं वसन्ततिलकेनाह-

निशि वा श्रवणोदये दिगैन्द्री गुरुभस्योदयनेऽथ वह्निभस्य।
सुरवर्धकिवायुभान्तरालेऽप्यमुतः साधय पूर्ववच्च याम्याम्।।१०।।

अन्वयः- वा निशि श्रवणोदये गुरुभस्योदयने अथ वह्निभस्योदयने सुरवर्धकिवायुभान्तराले अपि ऐन्द्री दिक्, अमुतः पूर्ववत् च याम्यां साधयेत्।।१०।।

(बलदाभाष्यम्) वा अथवा निशि रात्रौ श्रवणस्योदयोऽर्थाद्दर्शनेऽथवा गुरुभस्य पुष्यस्योदयेऽथवा वह्निभस्य कृत्तिकाया दर्शनेऽथवा सुराणां देवानां वर्धकिस्त्वष्टा वायुः प्रसिद्धस्तयोर्भे चित्रास्वात्यौ तयोरन्तराले मध्ये ऐन्द्री दिगेतदुक्तं भवति दूरवीक्षणयन्त्रेण रात्रौ श्रवणस्य पुष्यस्य कृत्तिकायाश्चोदयं दृष्ट्वा तद्यन्त्रं स्थिरं कृत्वा तदग्राद्भूमौ लम्बं पातयेत्। लम्बमूले प्राचीदिक्। सुरवर्धकिवायुभान्तराल इत्यस्य वैशद्यार्थमग्रिमश्लोके

द्रष्टव्यम्। चात्पुनरमुत ऐन्द्रीदिक्तः पूर्ववद्रज्जुं द्विघ्नामितिवद्याम्यां दक्षिण-दिशं साधयेदिति।।१०।।

ज्योत्स्ना- प्रकृत श्लोक द्वारा रात्रि में पूर्व दिशा के साधन का प्रकार बतलाते हुए कहते हैं कि- अथवा रात्रि में आकाश में जिस ओर श्रवण नक्षत्र, पुष्य नक्षत्र एवं कृत्तिका नक्षत्र का उदय होता हुआ दिखलाई पड़े वह दिशा पूर्व दिशा होती है। अथवा चित्रा एवं स्वाती के मध्य में पूर्व दिशा जाननी चाहिए। तत्पश्चात् उसी को आधार बनाकर पूर्ववत् दक्षिण और उत्तर दिशा का भी साधन करना चाहिए।।१०।।

चित्रास्वात्योरन्तरतः कथं प्राचीसाधनमित्यस्योत्तरमनुष्टुभाह-

चित्रं विध्वैकया स्वातिमन्ययापि शलाकया।
तिर्यक्स्थान्तरचिह्नात्तु द्विमूले स्यात्स्फुटेन्द्रदिक्।।११।।

अन्वयः- तु द्विमूले (दत्तदृष्टिर्द्रष्टा) एकया शलाकया चित्राम् अन्यया स्वातीम् अपि विद्ध्वा तिर्यक् स्थान्तरचिह्नात् (लम्बपातेन) स्फुटा इन्द्रदिक् स्यात्।।११।।

(बलदाभाष्यम्) तु पुनः द्वयोः शलाकयोर्मूले, दत्तदृष्टिर्द्रष्टेति शेषः। एतदुक्तं भवति समभूमौ द्रष्ट्युच्छ्रायमितस्तम्भोपराष्टदारुनिर्मितयोस्तुल्य-शलाकयोश्चैकैकमग्रं लौहकण्टकादिना शिथिलं यथा भवति तथा जटितं कृत्वा तत्र दृष्टिं निधायैकया चित्रामन्यया स्वातीं विध्वा ते तत्र स्थिरी-कृत्य तयोरपरप्रान्तद्वयमध्ये तिर्यक्स्था तिरश्चीनस्था यान्यशलाका तस्या अन्तरे मध्ये यच्चिह्नं तस्माद्भूमौ लम्बपातेन लम्बमूले स्फुटा स्पष्टेन्द्रदिक् प्राचीदिक् स्यादिति।। ११।।

ज्योत्स्ना- पूर्व दिक्साधन का ही अन्य प्रकार बतलाते हुए कहते हैं कि अपनी नजरों की ऊँचाई के बराबर ऊँचाई वाली तिपाई पर दो शलाकाओं को द्रष्टा इस प्रकार स्थापित करे कि उन्हें अपनी इच्छानुसार घुमा सके। तदनन्तर एक शलाका से चित्रा नक्षत्र का एवं दूसरी शलाका से स्वाती नक्षत्र का वेधन कर दोनों ही शलाकाओं को स्थिर कर अग्रभाग के मध्य में मध्य चिह्नयुक्त एक तीसरी शलाका रखकर उसके मध्यचिह्न से भूमि पर लम्ब गिराने पर जहाँ पर वह गिरे उसे पूर्व दिशा जानना चाहिए।।११।।

अनुष्टुब्जात्योदग्दिशमाह-

दिनमानदले सप्तांगुलच्छायाग्रतो हि यत्।
शङ्कुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा।।१२।।

अन्वयः- दिनमानदले सप्तांगुलच्छायाग्रतः शङ्कुमूले नीयमानं यत् सूत्रं सा हि उत्तरा दिशा स्यात्।। १२।।

(बलदाभाष्यम्) हीति निश्चयेन दिनमानस्य दिनस्य दलेऽर्धेऽर्थान्मध्याह्ने स्थापितस्य सप्तांगुलस्य शङ्कोर्या छाया तदग्रतस्तस्याः छायाया अग्रबिन्दुतः शङ्कोर्मूले तले नीयमानं प्राप्यमानं यत्सूत्रं सैवोत्तरा दिशा स्यादेतदुक्तं भवति घटिकादियन्त्रेण मध्याह्नसमयं ज्ञात्वा तदा शंकुच्छायैव दक्षिणोत्तरा स्यादेवेत्यत्र शंकुमानकल्पनायां नियमो नास्तीति ज्ञेयम्।। १२।।

ज्योत्स्ना- दिनमान के दल अर्थात् मध्याह्न में सात अंगुल की शंकु (कील) को समतल भूमि में स्थापित करके उस शंकु की छाया के अग्रिम बिन्दु से लेकर उसके मूल भाग तक सूत्रपात करने से उत्तर दिशा स्पष्ट होती है।।१२।।

एवं दिक्साधनमभिधाय मण्डपस्य चतुष्कोण-
त्वात्तत्साधनं विपरीताख्यानक्याह-

दिगन्तशङ्कुद्वयगं द्विपाशं विस्तारतुल्यं तु गुणं दलाङ्कयम्।
कोणे प्रकर्षेदिति वेदकोणेष्वेवं चतुष्कोणमतीव साधु।।१३।।

अन्वयः- द्विपाशं विस्तारतुल्यं दलाङ्क्यं गुणं (विधाय) तु दिगन्तश-ङ्कुद्वयगं (कृत्वा) कोणे प्रकर्षेत् इति वेदकोणेषु एवम् अतीव साधु चतुष्कोणम् (स्यात्)।।१३।।

(बलदाभाष्यम्) द्वौ पाशौ ग्रन्थिविशेषौ यस्मिन्तत्तथाभूतं तथा विस्तारः क्षेत्रस्य विस्तारो यथा षोड़शहस्तमण्डपस्य षोड़शैव विस्तारस्तत्तुल्यं दलाङ्कयमर्धभागाङ्कितं गुणं सुडोरकं विधायेति शेषः। तु पुनः दिशि तस्या अन्ते चरमदिशि च (अन्तो जघन्यं चरममित्यमरः) यथा पूर्व-दिशोऽनुलोमगणनयोत्तरा चरमा विलोमगणनया दक्षिणैवमन्यत्रापि बोध्यम्। तत्र यच्छंकुद्वयं तद्गं पाशद्वयं कृत्वेति शेषः। पूर्वाङ्कितार्धचिह्नं धृत्वा कोणे साध्यकोणे प्रकर्षेदाकर्षेत् यत्रार्धचिह्नं पतति तत्रैव साध्यविदिक् इतीत्थं वेदकोणेषु चतुर्ष्वपि कोणेषु क्रिया कार्या। एवंकृतेऽतीव साधु स्फुटं चतुष्कोणं भवतीति।। १३।।

ज्योत्स्ना- दिक्साधन की विधि को स्पष्ट करने के पश्चात् अब मण्डप के चतुष्कोण होने के कारण उसके चतुष्कोणत्व-साधन की प्रक्रिया बतलाते हैं।

पूर्व में दिक्साधन हेतु वृत्त के अन्दर पूर्व-पश्चिम-उत्तर और दक्षिण- इन चारो दिशाओं में जो चार कीलें स्थापित की गई हैं उन्हीं से चतुष्कोण-साधन की प्रक्रिया भी सम्पन्न करनी चाहिए। एतदर्थ मण्डप यदि सोलह हाथ का हो तो सोलह हाथ की ही एक रस्सी लेकर उस रस्सी के दोनों तरफ दो फंदा बना दे। तत्पश्चात् पूर्व और दक्षिण

दिशा में स्थापित कीलों में दोनों फन्दों को लगाकर रस्सी को मध्य भाग से पकड़कर खींचने से अग्निकोण की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। इस प्रकार जहाँ पर अग्निकोण भी स्थिति स्पष्ट हो वहाँ पर एक कील स्थापित कर दे। इसी प्रकार दक्षिण और पश्चिम दिशा स्थित कीलों में रस्सी के फंदों को लगाकर खींचने से नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम एवं उत्तर दिशास्थित कीलों में फन्दा लगाकर खींचने से वायव्य कोण एवं उत्तर तथा पूर्व दिशा-स्थित कीलों में फंदे को लगाकर खींचने से ईशान कोण की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। प्राप्त सभी कोणों पर एक-एक कील स्थापित कर दे। फलस्वरूप एक चौकोर मण्डप तैयार हो जायेगा। इसी प्रकार मण्डप के चतुष्कोण का साधन करना चाहिए।।१३।।

परमदिनदिनोद्भवान्तरालं शरगुणितं च हृतं रसैर्द्युतिः स्यात्।
समकुगतनरे नगाङ्गुले त्विट् समगतया स्वभया भवेदुदीची।।

अन्वयः- शरगुणितं परमदिनदिनोद्भवान्तरालं रसैः हृतं द्युतिः स्यात्, नगांगुले नरे समकुगते त्विट् (भवति), समगतया स्वभया उदीची भवेत्।।

ज्योत्स्ना- जिस दिन दिक्साधन करना हो उस दिन के दिनमान को परमदिन में से घटा दे। घटाने के पश्चात् जो अंक शेष बचे उसमें पाँच से गुणा करके छः का भाग देने पर मध्याह्न की छाया प्राप्त होती है एवं समतल भूमि में सात अंगुल की शंकु (कील) लगाने पर जिस ओर मध्याह्न-छाया होगी वही उत्तर दिशा होती है।

उदाहरण- परम दिन- ३४।५; दिक्साधन दिन का दिनमान २५।५५; दिक्-साधन दिन के दिनमान २५।५५ को परम दिन ३४।५ में से घटाने पर ८।१० शेष रहता है। इस शेष में ५ से गुणा करने पर ४०। ५० हुआ; जिसमें छः का भाग देने पर छ अंगुल, छः यव और तीन यूका की छाया जिस ओर पड़े उसके अग्रभाग को चिह्नित कर दे, वही उत्तर दिशा होगी। पूर्व-पश्चिम आदि का साधन पूर्ववत् ही करना चाहिए।।

मण्डपे विशेषं शालिन्याह-

उच्चां भूमिं मण्डपस्य प्रकुर्य्याद्धस्तोन्मानामर्धहस्तोन्मिता वा।
मध्ये भूमिं मण्डपेनोन्मितां च त्यक्त्वा कुर्य्यान्मण्डपश्चेद्द्वितीयः।।१४।।

अन्वयः- मण्डपस्य भूमिं हस्तोन्मानाम् अर्धहस्तोन्मितां वा उच्चां प्रकुर्यात्। च (प्रतिष्ठायां यदा) चेत् द्वितीयः मण्डप कर्त्तव्यः तदा मध्ये मण्ड-पेन उन्मितां भूमिं त्यक्त्वा मण्डपं कुर्यात्।।१४।।

(बलदाभाष्यम्) **हस्तोन्मानां हस्तमितां वार्धहस्तोन्मितां द्वादशांगुल-परिमितां मण्डपस्योच्चामुन्नतां भूमिं प्रकुर्यात्। तथोक्तं कपिलपञ्चरात्रे-**

उच्छ्रायो हस्तमानं स्यात्सुसमं च सुशोभनम्।। इति।

सिद्धान्तशेखरे– स्थलादर्कांगुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्।। इति।

च पुनश्चेद्यदि द्वितीयोऽन्यो मण्डपोऽर्थात्प्रधानमण्डपापेक्षयाऽन्यो मण्डपश्चेत्कर्त्तव्यस्तदा मध्ये प्रधानकर्त्तव्यमण्डपयोर्मध्ये मण्डपेन प्रधान-मण्डपेनोन्मितां तुल्यां भूमिं त्यक्त्वा मण्डपं कुर्यात्। तथोक्तं वास्तुशास्त्रे–

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्त्तव्यं मण्डपान्तरम्। **इति।। १४।।**

ज्योत्स्ना– मण्डप के चतुष्कोण-साधन के अनन्तर मण्डप के भूमि की ऊँचाई एवं दो मण्डपों के मध्य के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

स्वाभाविक भूमि से मण्डप के भूमि की ऊँचाई एक हाथ अथवा आधा हाथ (बारह अंगुल) रखनी चाहिए। साथ ही देवप्रतिष्ठा आदि में यदि दूसरा मण्डप बनाना भी आवश्यक हो तो दोनों मण्डपों के मध्य में प्रथमतः निर्मित मण्डप की कुल ऊँचाई के बराबर स्थान को रिक्त रखना चाहिए। आशय यह है कि प्रथमतः निर्मित मण्डप की जितनी ऊँचाई हो उतना स्थान लम्बाई में छोड़कर ही दूसरा मण्डप बनाना चाहिए। इस सन्दर्भ में विभिन्न शास्त्रों के वचन इस प्रकार हैं–

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्तव्यं मण्डपान्तरम्। (वास्तुशास्त्र)
उच्छ्रायो हस्तमानं स्यात्सुसमञ्च सुशोभनम्। (कपिलपञ्चरात्र)
स्थलादर्कांगुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्। (सिद्धान्तशेखर)

मण्डपनिर्माण किसके लिए किस दिशा में करना चाहिए, इस सन्दर्भ में मदन-रत्न में इस प्रकार कहा गया है–

विप्राणां मण्डपः प्राच्यां राज्ञामीशानकोणतः।
विशामुदीच्यां शूद्राणां प्रतीच्यां शस्त ईरितः।।
वैष्णवो मण्डपः प्राच्यामीशान्यां शैव ईरितः।
शाक्तः प्रतीच्यां कौबेर्यामितरेषां सुपर्वणम्।।
महामण्डपतः प्राच्यां उदीच्यां स्नानमण्डपम्।
गजहस्तायतिं दीर्घं चतुरस्रं चतुर्दिशम्।।
वितस्त्युच्छ्रायसहितं चतुर्द्वारोपशोभितम्।
मध्ये महामण्डपतो ह्यर्धदेशं परित्यजेत्।।
तन्मध्ये स्थण्डिलं रम्यं हस्तमात्रप्रमाणकम्।
चतुरंगुलकोच्छ्रायं त्रितयस्वस्तिकैर्युतम्।।

निर्मित किये जाने वाले मण्डप का स्थान कहाँ होना चाहिए, इस सन्दर्भ में वास्तुशास्त्र के इस प्रकार हैं–

गृहस्योत्तरपूर्वेण प्रागुदक्प्रवणं तथा।
देवतासन्निधौ वाऽपि पुण्यदेशे जलाशये।।
सुसमे भूमिभागे च कृत्वा हेरम्बपूजनम्।
मण्डपं रचयेत्तत्र चतुरस्रमुदक्प्लवम्।।

इस सन्दर्भ में सिद्धान्तशेखर के वचन इस प्रकार हैं-

हर्म्याग्रे मण्डपं कुर्यात्त्यक्त्वा हर्म्यसमां क्षितिम्।
हर्म्यात्पञ्चगुणं वाऽपि [1]सोपानाद्दशहस्तकम्।।

रुद्रयामल इस प्रकार कहता है -

गृहे देवालये वाऽपि सङ्कीर्णं यत्र दृश्यते।
तत्र कार्यं मण्डपज्ञैः संश्लिष्टं मण्डपद्वयम्।।

हयशीर्षपञ्चरात्र इस प्रकार कहता है-

वापीकूपतड़ागानां पश्चिमे यागमण्डपम्।

मत्स्यपुराण के वचन इस प्रकार हैं-

गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद्बुधः।।१४।।

मण्डपप्रमाणं वसन्ततिलकेनाह-

दशसूर्यकरोन्मितोऽधमः स्यादिनशक्रप्रमितैः करैस्तु मध्यः।
धृतिभूपकरोन्मितो वरीयान्नखहस्तोऽप्यथ मण्डपस्तुलायाम्।।१५।।

अन्वयः- दशसूर्यकरोन्मितः अधमः, इनशक्रप्रमितैः करैः तु मध्यमः, धृतिभूपकरोन्मितः वरीयान् (स्यात्)। अथ नखहस्तः अपि तुलायां मण्डपः (स्यात्)।।१५।।

(बलदाभाष्यम्) **दश प्रसिद्धाः सूर्यो द्वादशैतन्मितो मण्डपोऽधमः स्यात्। तु पुनरिनो द्वादश शक्रश्चतुर्दशैतत्प्रमितैस्तुल्यैः करैर्हस्तैर्मध्यो नातिनिकृष्टो नाप्युत्तमः स्यात्। धृतिरष्टादशभूपाः षोड़शैतत्करैरुन्मितस्तुल्यो मण्डपो वरीयानुत्तमः स्यात्। अथ नखहस्तो विंशतिहस्तमितोमण्डपोऽपि निश्चयेन तुलायां तुलादाने भवतीति। तथोक्तं लिङ्गपुराणे-**

दश द्वादशहस्तौ च द्विद्विवृद्ध्या ततः क्रमात्।
विंशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा।
तथा द्वादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः।।

पञ्चरात्रेऽपि- कनीयान् दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः।
तथा षोड़शभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोतमः।।

---

१. सोपानादिति तु तडागादिप्रतिष्ठाविषयमिति कल्पलता।।

ननु मण्डपेषु हस्तगत्या कथमुत्तमाधमतोक्तेत्याशङ्काम्परिहरन्नुच्यते लघुमण्डपे नवकुण्डीपक्षे पञ्चमेखलापक्षे चाचार्याद्युपवेशनं वास्तविकी कुण्डरचना च न सम्भवत्यतस्तत्राधमत्त्वमेवं यत्र सङ्कोचेन कुण्डरचना निवासश्च तेषां, तत्र मध्यमत्त्वं यत्र च सुखेन कुण्डरचना निवासश्च तत्रोत्तमत्त्वमुक्तमाचार्यैः। उत्तमोऽपि मण्डपो रत्न्यरत्न्यैकहस्तमितैकमेखलापक्ष एवादरणीयः। उत्तमेऽपि मण्डपे दशहस्तकुण्डस्य नवपञ्चमेखलापक्षस्य समावेशो न स्यादतो मण्डपस्य वृद्धिरुक्ता मन्त्रमुक्तावल्यां चतुर्विंशद्धस्तपर्यन्तं मण्डपस्य वृद्धिरिति। वास्तुशास्त्रेऽपि पञ्चहस्तमारभ्य द्वात्रिंशद्धस्तपर्यन्तं वृद्धिरुक्ता कर्मविशेषे ग्रन्थविस्तरभयान्न लिख्यत इति।। १५।।

ज्योत्स्ना- मण्डप का प्रमाण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दस एवं बारह हाथ का मण्डप अधम होता है। बारह एवं चौदह हाथ परिमाण वाला मण्डप मध्यम होता है तथा सोलह एवं अट्ठारह हाथ का मण्डप उत्तम होता है। तुलादान में बीस हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप निर्मित करना चाहिए।

मण्डपों के अधम, मध्यम और उत्तम होने का निर्धारण पञ्चरात्र में इस प्रकार किया गया है-

कनीयान्दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः।
तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपं स्यादिहोत्तमम्।।

लिङ्गपुराण में इसका निरूपण इस प्रकार किया गया है-

दशद्वादशहस्तौ च द्विद्विवृद्ध्या ततः क्रमात्।
विंशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा।
तथाऽष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः।।

मण्डप के उत्तम-मध्यम की विवेचना यहाँ इसलिए स्पष्ट की गई है कि छोटे मण्डपों में पञ्चकुण्डी-नवकुण्डी इत्यादि रचनायें नहीं की जा सकतीं। इसीलिए मण्डपों की वृद्धि का भी उल्लेख विविध शास्त्रों में किया गया है, जैसे कि-

यद्वा द्वादशहस्ताद्या द्विहस्तवृद्धितो नव।
अष्टाविंशतिहस्तान्ताः कैश्चिदुक्ता मनीषिभिः।।

अन्य शास्त्रों में भी इस सम्बन्ध में व्यवस्था दी गई है, जैसे-

त्रिषूत्तमेषु चैवोक्तस्त्रिंशद्धस्तप्रमाणतः।
विंशत्या मध्यमेषूक्तस्त्वन्येषु दशभिः करैः।। (सिद्धान्तशेखर)
सर्वे वा सर्ववर्णानां कार्याः कार्यानुसारतः।
तेषां व्यवस्था ....।। (विश्वकर्मा)

हीनस्तु मण्डपः कार्यो हीने चायतने सदा।
उत्तमे तूत्तमः कार्यो मध्यमे मध्यमस्तथा।। (हयशीर्षपञ्चरात्र)

ब्राह्मणादि वर्णक्रमानुसार मण्डप का परिमाण शैवसिद्धान्तशेखर में इस प्रकार किया गया है-

विप्राणां विंशतिर्हस्तो मण्डपस्तु सुशोभनः।
[1]कलाहस्तः क्षत्रियाणां वैश्यानां [2]मीनहस्तकः।।
दशहस्तस्तु शूद्राणां हीनानामष्टहस्तकः ।। १५।।

द्वारमानं मध्यवेदीमानञ्चाख्यानक्याह-

दिगन्तराले द्विकरं भवेद् द्वाः चतुष्टयं वेदगजांगुलैस्तत्।
विवर्धितं मध्यवरिष्ठयोः स्याद्वेदी त्रिभागेन समाकरोच्चा।।१६।।

अन्वयः- दिगन्तराले द्विकरं चतुष्टयं द्वाः भवेत्। तत् मध्यवरिष्ठयोः वेदगजांगुलैः विवर्द्धितं स्यात्। त्रिभागेन समाकरोच्चा वेदी कार्या।।१६।।

(बलदाभाष्यम्) **दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरास्तासामन्तराले मध्ये करयोर्द्वयमिति द्विकरं युग्महस्तमितमित्यर्थः। चतुष्टयं चतुःसंख्याकं द्वाः द्वारं भवेत्। तद्द्वारचतुष्टयं मध्यवरिष्ठयोर्मध्यमोत्तमयोर्मण्डपयोः क्रमेण वेदाश्चत्वारो गजा अष्टौ तत्तुल्यांगुलैर्विवर्धितं स्यात् । तद्यथा कनिष्ठमण्डपे द्विहस्तं मध्यमे चतुरंगुलाधिकहस्तद्वयमुत्तमेऽष्टांगुलाधिकहस्तद्वयमिति। त्रिभागेन मण्डपस्य तृतीयांशेन समार्थान्मण्डपे तुल्यनवकोष्ठं कृते मध्यकोष्ठसमानाकरोच्चैकहस्तोच्छ्रिता वेदी मध्यवेदी कार्येति। तथोक्तं पञ्चरात्रे-**

कनिष्ठे द्विकरं द्वारं चतुरंगुलवृद्धितः।
मध्यमोत्तमयोर्वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः।। **इति।**

क्रियासारेऽपि-

त्रिभागं मण्डपं कृत्वा मध्यभागे तु वेदिका।
हस्तमात्रं तदुत्सेधं चतुरस्रं समन्ततः।। **इति।**

सिद्धान्तशेखरे तु विशेषः-

वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्रा च पद्मिनी।
श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु।।
चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा।
तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा।।

---

१. कलाहस्तः = १६ हाथ, २. मीनहस्तकः = १२ हाथ

राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने।
विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्रसमन्विता।
दर्पणोदरसङ्काशा निम्नोन्नतविवर्जिता।। **इति।।१६।।**

ज्योत्स्ना- मण्डप के द्वार एवं मध्यवेदी का मान स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सभी प्रकार के मण्डप के चारो दिशाओं में चार द्वार बनाने चाहिए। इनमें से अधम मण्डप के द्वार की चौड़ाई दो-दो हाथ; मध्यम की दो हाथ, चार अंगुल और उत्तम मण्डप की चौड़ाई दो हाथ, आठ अंगुल रखनी चाहिए। साथ ही द्वार की ऊँचाई चार हाथ रखनी चाहिए।

कतिपय विद्वानों ने कनिष्ठ मण्डप के द्वार की ऊँचाई चार हाथ एवं मध्यम तथा उत्तम मण्डप के द्वार की ऊँचाई पाँच हाथ निर्दिष्ट किया है, जो कि विचारणीय है; यत: कुण्डसिद्धिमतानुसार मण्डप में पाँच हाथ के बारह स्तम्भ होते हैं और उन स्तम्भों का पञ्चमांश जमीन में गड़ा होता है। ऐसी स्थिति में पाँच हाथ ऊँचा द्वार बनाना तर्क-संगत नहीं प्रतीत होता। **अथवा रोपणीयास्ते सप्तहस्ता निजेच्छया** इस प्रमाणवचन के अनुसार स्तम्भों को सात-सात हाथ का लगाया जाय तभी पाँच हाथ का द्वारनिर्माण सम्भव हो सकता है।

द्वारों को चौखटयुक्त बनाने की प्राचीन शैली है, क्योंकि ऊद्र्ध्व देहली और अधोदेहली का पूजन किया जाता है। कतिपय आधुनिक याज्ञिक सुविधा को ध्यान में रखकर बाहर के स्तम्भसदृश दो-दो स्तम्भ ही चारो द्वारों पर लगा देते हैं और ऊपर-नीचे देहलियों की कल्पना कर उनका पूजन सम्पन्न करा देते हैं, लेकिन ऐसा करना उचित नहीं है।

वेदी-निर्माण के सम्बन्ध में कहते हैं कि मण्डप को समान आकार वाले नव कोष्ठों में विभक्त कर मध्यवर्ती कोष्ठ में एक हाथ ऊँची मध्य वेदी बनानी चाहिए, इसे ही प्रधान वेदी कहा जाता है। यह वेदी चतुष्कोण होनी चाहिए।

चतुष्कुण्डी, पञ्चकुण्डी, सप्तकुण्डी, अष्टकुण्डी और नवकुण्डी यज्ञों में विशेषकर मध्य में ही प्रधान वेदी को बनाने का निर्देश प्राप्त होता है; क्योंकि यज्ञ भगवान् मध्य में ही विराजमान हो सर्वमुख होकर आहुतियों को ग्रहण करते हैं। अत: **युक्तिप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धि:** इस वचन के अनुसार प्रधान वेदी की स्थिति मध्य भाग में ही सिद्ध होती है। कतिपय आचार्य उपर्युक्त पञ्चकुण्डी आदि यज्ञों में मण्डप के मध्य में प्रधान वेदी को न बनवाकर आचार्यकुण्ड बनवाते हैं, जो कि विचारणीय है। प्रधान वेदी समस्त यज्ञों में मध्य में ही बनानी चाहिए, यह विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणों से भी स्पष्ट होता है; जैसे-

कनिष्ठे द्विकरं द्वारं चतुरंगुलवृद्धितः।
मध्यमोत्तमयोर्वेदी मण्डपस्य विधानतः।। (पञ्चरात्र)
त्रिभागं मण्डपं कृत्वा मध्यभागे तु वेदिका।
हस्तमात्रं तदुत्सेधं चतुरस्रं समन्ततः।। (क्रियासार)
धूमतिर्गमनोपेतां मध्ये वेदीसमन्विताम्।। (ईश्वरसंहिता)
ततो मण्डपसूत्रन्तु त्रिगुणीकृत्य तत्त्ववित्।
पूर्वादिषु क्रमात्तस्य मध्यभागे तु वेदिका।। (शारदातिलक)
तत्रैका वेदिका कार्या यज्ञमण्डपमध्यतः। (परशुराम)

विष्णुयाग का उपक्रम करके पाद्मसंहिता में भी प्रधान वेदी का वर्णन मण्डप के मध्यम में ही किया गया है, जैसे–

तत्त्रिभागमिते क्षेत्रेऽरत्निमात्रसमुच्छ्रिताम्।
चतुरस्रां ततो वेदीं मण्डलाय प्रकल्पयेत्।।

जहाँ पर मध्य में एक कुण्ड बनाने का विधान प्राप्त होता है, वहाँ पर वेदी का निर्माण पूर्व में करना चाहिए, जैसा कि शान्तिमयूख में कहा भी गया है–

मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः।
अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च।।
कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदीं कुर्याद्विचक्षणः।
चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितां नृप।।

एककुण्डात्मक विष्णुयाग में भी प्रधान वेदी मध्य में तथा कुण्ड उत्तर में रखने की विधि मेरुतन्त्र में इस प्रकार वर्णित है–

देवस्य दक्षिणे पार्श्वे कुण्डं स्थण्डिलमेव वा।
कारयेत्प्रथमेनैव द्वितीयेन तु प्रोक्षणम्।।

सिद्धान्तशेखर में चार प्रकार की वेदियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो कि निम्नवत् है–

वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्रा तु पद्मिनी।
श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु।।
चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा।
तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा।।
राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने।
विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्रसमन्विता।।
दर्पणोदरसंकाशा निम्नोन्नतविवर्जिता।।

चतुष्कोण वेदी समस्त फलों को प्रदान करने वाली होती है। तालाब, वापी,

कूप आदि की प्रतिष्ठा में आठ कोण वाली पद्मिनी वेदी, राजाओं के अभिषेक में बारह कोण वाली सर्वतोभद्रा वेदी एवं विवाह में बीस कोण वाली श्रीधरी वेदी शुभदायिनी कही गई है। इन वेदियों का लक्षण जान लेना भी यहाँ आवश्यक है। अत: उनमें से पद्मिनी का लक्षण इस प्रकार है-

वेद्याः फलं भूमिसमुद्रनिघ्नं वेदाक्षिभिस्तद्विभजेच्चलब्धेः।
मूलं व्यासः पद्मिनीवेदिकायाः सा दिक्कोणा पद्मकुण्डोक्तवत्स्यात्।।

राज्याभिषेकादि में प्रयुक्त की जाने वाली सर्वतोभद्रा जैसे-

वेदीफलं खाब्धिकरांशकेनाष्टघ्नेन युक्तञ्च पुनर्द्विनिघ्नम्।
तन्मूलमित्या वलयन्तु वेदिस्थलस्य मध्यात्प्रविधेहि तस्मिन्।।
दिक्कोणकं वारिधिकोणमेकं तस्मिंस्त्विकाष्ठास्रकमब्धिकोणम्।
विधाय चाद्यस्य भुजांघ्रिचिह्नात्सूत्रञ्च संलग्नभुजांघ्रिचिह्नात्।।
बाह्यार्धकोष्ठभ्रमिमार्जनेन स्यात्सूर्यकोणा किल भद्रिकैवम्।।

विवाहादि में निर्मित की लाने वाली श्रीधरी वेदी का लक्षण इस प्रकार बताया गया है-

वेदीफलं स्वाभ्ररसांशकेनार्कघ्नेन युक्तञ्च पुनार्द्विनिघ्नम्
तन्मूलमित्यादिविदिक्स्थकोणवेदास्रकान्तं तनुयात्ततश्च।
आद्याब्धिकोणस्य भुजार्धमत्र त्रेधा विभज्यापि च सूत्रपातात्
पूर्वोक्तवच्छ्रीधरीवेदिरत्र भवेन्नखास्रा नयनाभिरामा।।१६।।

तुलापुरुषदाने विशेषं विपरीताख्यानक्याह–

तुलाप्रदानेऽधममध्ययोः स्यात्सा पञ्चहस्तोत्तमकेऽद्रिहस्ता।
ईशानभागे ग्रहवेदिका तु हस्तोन्मितोच्छ्रायवती त्रिवप्रा।।१७।।

अन्वयः– तुलाप्रदाने अधममध्यमयोः सा पञ्चहस्ता उत्तमके अद्रिहस्ता स्यात्। तु ईशानभागे हस्तोन्मितोच्छ्रायवती त्रिवप्रा ग्रहवेदिका (स्यात्)।।१७।।

(बलदाभाष्यम्) **तुलाप्रदाने तुलापुरुषदानेऽधममध्यमयोर्मण्डपयोः सा मध्यवेदी पञ्चहस्ता पञ्चहस्तपरिमिता उत्तमके उत्तमे मण्डपेऽद्रिहस्ता सप्तहस्तमिता स्यात्। तथोक्तं मात्स्ये–**

पञ्चहस्ता भवेद्वेदी सप्तहस्ताथवा भवेत्।

तु पुनरीशानभागे मण्डपस्येशाणकोणे हस्तोन्मितोच्छ्रायवती हस्तैक-मितायामदैर्घ्योच्छ्राययुता तथा त्रीणि वप्राणि प्राकाराणि सोपानानीति यावत्। यस्यां सा तथाभूता ग्रहार्थं वेदिका स्यादिति।। १७।।

ज्योत्स्ना- तुलापुरुषदान में मध्य वेदी की विशेषता एवं ग्रहवेदी का निरूपण प्रकृत श्लोक द्वारा करते हुए कहते हैं कि तुलादान-हेतु निर्मित अधम और मध्यम मण्डप के मध्य में प्रधान वेदी पाँच-पाँच हाथ तथा उत्तम मण्डप में सात-सात हाथ लम्बी-चौड़ी बनानी चाहिए, जो कि जमीन से एक हाथ ऊँची होनी चाहिए। समस्त मण्डपों में ईशान कोण में ग्रहवेदी का भी निर्माण करना चाहिए; जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक हाथ तथा ऊँचाई एक हाथ हो एवं जिसमें तीन सीढ़ियाँ लगी हों। ग्रहवेदी के विषय में कुण्डरत्नावली में इस प्रकार कहा गया है-

अथ प्रधानादपि यत्र पूर्वं ग्रहाधिवासश्च तदा प्रधानम्।
ईशानदेशे च ततस्त्ववाच्यां श्रीखेटवेदिः करविस्तृतोच्चा।।
कोटिलक्षयुते होमे द्विसार्धकरसम्मिता।
वर्जयित्वा रुद्रहोमं ईशान्यां ग्रहवेदिका।।

महारुद्रादि यज्ञों में प्रधान वेदी का निर्माण ईशान कोण में तथा उसके दक्षिण भाग में ग्रहवेदी की स्थापना करनी चाहिए। कोटिहोम में इस ग्रहवेदिका की चौड़ाई दो हाथ, लक्षहोम में डेढ़ हाथ एवं अयुतहोम में एक हाथ रखनी चाहिए, जिसकी ऊँचाई बारह अंगुल होनी चाहिए। ये सभी ग्रहवेदिकायें दो मेखलाओं वाली होनी चाहिए। जैसा कि मत्स्यपुराण में कहा भी गया है-

गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम्।
वप्रद्वयावृतां वेदीं वितस्त्युच्छ्रायसम्मिताम्।
संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदक्प्लवाम्।।

ग्रहवेदिका के वप्रों (सीढ़ियों) का मान भी मत्स्यपुराण में ही स्पष्ट किया गया है, जिसके अनुसार पहली सीढ़ी दो अंगुल ऊँची एवं दो अंगुल चौड़ी, दूसरी तीन अंगुल ऊँची एवं दो अंगुल चौड़ी (किसी-किसी के मत से तीन अंगुल चौड़ी भी) तथा तीसरी सीढ़ी भी यदि बनानी हो तो वह भी तीन अंगुल ऊँची एवं दो अंगुल चौड़ी होनी चाहिए। जैसा कि कहा भी है-

द्व्यंगुलेनोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः।
त्र्यंगुलोच्छ्रायसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि।
द्व्यंगुलश्चैव विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः।।

इनके अतिरिक्त मण्डप के अग्निकोण में एक हाथ चौड़ी एवं बारह अंगुल ऊँची दो वप्रों वाली **मातृकावेदी**; नैर्ऋत्यकोण में एक हाथ चौड़ी एवं बारह अंगुल ऊँची दो वप्रों वाली **वास्तुवेदी** तथा वायव्य कोण में एक हाथ चौड़ी एवं बारह अंगुल ऊँची दो वप्रों वाली **क्षेत्रपाल** वेदी बनानी चाहिए। वेदियों का प्रमाण मन्थानभैरवतन्त्र में इस प्रकार कहा गया है-

शेषवेद्यां ततः ख्यातं हस्तामेकं तु विस्तरे।
उच्छ्रायार्कांगुलः प्रोक्तः स्नानवेदी द्विहस्तका।।
आग्नेय्यां मातृकावेदी वास्तुवेदी च नैर्ऋते।
क्षेत्रपालस्य वायव्यामीशान्यां च नवग्रहाः।।

कतिपय विद्वान् **आग्नेय्यां योगिनी वेदी वास्तुवेदी च नैर्ऋते। वायव्ये क्षेत्रपालानां ईशाने ग्रहवेदिका।।** वचन को प्रमाण मानते हुए अग्निकोण में मातृकावेदी के स्थान पर योगिनी वेदी की स्थापना करते हैं और मण्डप के बाहर पञ्चाङ्ग कराकर लकड़ी के पीढ़े पर स्थापित गणेशादि देवों, वरुण-कलश एवं सप्तघृतमातृकाओं का पूजन कराने के पश्चात् उन्हें उठाकर अग्निकोण में स्थापित कर देते हैं। दोनों ही प्रक्रियायें शास्त्रसम्मत हैं; अतएव क्षेत्रीय प्रथा के अनुसार यथारुचि इनका सम्पादन करना चाहिए।

शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी याग में अष्टकोण वेदी बनाने का विधान है, जिसका निर्माण-प्रकार शतचण्डीयज्ञविधान में इस प्रकार कहा गया है-

मध्यस्तम्भचतुष्कमध्यसमं चतुरस्रं कृत्वा षोड़शहस्तमण्डपेऽष्टादशांगुलाधिकहस्तेन विंशतिहस्ते चतुर्विंशत्यंगुलाधिकहस्तेन कोणेषूभयतोऽङ्कयित्वाष्टसूत्रदानादष्टास्रम्- इति राघवभट्टः।। १७।।

स्तम्भनिवेशनं भुजङ्गप्रयातशालिनीभ्यामाह-

समत्रित्रिभागे च सूत्रं प्रदद्यादुग्दक्षिणं चापि पूर्वापरञ्च।
तत्रस्त्र्यंशपूर्त्तौ च कोणेषु दद्यात्समस्तम्भकान्द्वादशैवेषु हस्तान्।।१८।।
वेद्याः कोणे हस्तिहस्तोच्चवेदस्तम्भान्वह्निदिक्तः सचूड़ान्।
प्रादक्षिण्यात्पञ्चमांशं तु भूमौ दद्यादेवं षोडशस्तम्भसंस्थाः।।१९।।

अन्वयः- च समत्रित्रिभागे उदग्दक्षिणं पूर्वापरमपि सूत्रं प्रदद्यात्। ततः त्र्यंशपूर्त्तौ च कोणेषु इषुहस्तान् द्वादश एव स्तम्भकान् दद्यात्। सचूड़ान् हस्तिहस्तोच्चवेदस्तम्भान् वह्निदिक्तः प्रादक्षिण्यात् वेद्याः कोणे दद्यात्। तु पञ्चमांशं भूमौ दद्यात्। एवं षोड़शस्तम्भसंस्था (स्यात्)।।१८-१९।।

(बलदाभाष्यम्) **चात्पुनः समेषु तुल्येषु त्रिषु त्रिषु भागेष्वर्थान्मण्डपस्य विस्तारे त्रिधा विभक्ते प्रतिभागेष्वित्यर्थः। उदग्दक्षिणमुत्तरचिह्नमारभ्य दक्षिणचिह्नपर्यन्तमेवं पूर्वापरं पूर्वचिह्नमारभ्य पश्चिमचिह्नपर्यन्तमपि प्रकर्षेण स्फुटरूपेण सूत्रं दद्यात्। एवं कृते नवकोष्ठात्मको मण्डपो भवति। ततस्तदनन्तरम्। त्र्यंशस्य त्रिभागस्य यत्र पूर्तिः समाप्तिः सा च प्रतिदिशं द्विसंख्यकैवं चतुर्दिक्ष्वष्टौ त्र्यंशपूर्त्तयस्तास्वष्टौ स्तम्भाः। चात्पुनः कोणेषु चतुर्षु चत्वार-**

स्तम्भा एवमिषुहस्तान्पञ्चहस्तपरिमितान्द्वादश समस्तम्भकान्तुल्यपरिमाणकान् दद्यादारोपयेत्। अपि च सचूडान् सशिखान् हस्तिभिरष्टभिर्हस्तैरुच्चांस्तथा-वेदस्तम्भान् चतुरः [illegible] -भान् वह्निदिक्तोऽग्निकोणात् प्रादक्षिण्यात्प्रदक्षिणक्रमेण वेद्या मध्यवेद्याः कोणे दद्यादारोपयेत्। तेषामुक्तस्तम्भानां पञ्चमांशस्तु भूमौ निखनेदिति शेषः। एवं षोडशानां स्तम्भानां संस्था संस्थापनं स्या-दिति। तथोक्तं शारदातिलके–

षोड़शस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यमाः।
अष्टहस्तसमुच्छ्राया .... ।। इति।

पञ्चरात्रेऽपि-मण्डपार्धोच्छ्रितान्वेदसंख्यांश्चूडासमन्वितान् ।
स्तम्भान्समं च संस्थाप्य स्तम्भद्वादशकं पुनः।। इति।

यद्यप्यत्र मण्डपार्धोच्छ्रितानियुक्तं तथापि षोड़शहस्तमण्डपस्य मुख्य-त्वादष्टहस्तोच्छ्रिता एव स्तम्भा मुख्यत्वेनाचार्यैः स्वीकृता इति।। १८-१९।।

ज्योत्स्ना- अब समान त्रिभाग वाले मण्डप में बाहर के बारह स्तम्भों को गाड़ने की विधि स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के क्षेत्रफल के बराबर का एक सूत्र लेकर उसे त्रिगुण करके उस सूत्र से मण्डप के क्षेत्रफल को एक कोण से दूसरे कोण तक नापने पर मण्डप तीन समान भागों में विभक्त हो जायेगा। पुनः प्रत्येक भाग में पूरब से पश्चिम तक तथा दक्षिण से उत्तर तक सूत्र देने से मण्डप समान आकार वाले नौ कोष्ठों में विभक्त हो जायेगा। इस प्रकार के विभाग में जहाँ-जहाँ पर तृतीयांश की पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ चारो कोणों में दस अंगुल मोटाई वाले पाँच-पाँच हाथ के चूडासहित बारह खम्भे बाहरी भाग में गाड़ने चाहिए। खम्भे को गाड़ने का प्रारम्भ प्रदक्षिणा क्रमानुसार अग्निकोण से करना चाहिए। इस प्रकार चारो दिशाओं में दो-दो एवं चारो कोणों पर एक-एक खम्भे गाड़ने पर कुल बारह खम्भे स्थापित होते हैं।

उदाहरणार्थ- बारह हाथ के मण्डप में खम्भों के मध्य की दूरी चार-चार हाथ रखने पर बारह खम्भे स्थापित होंगे। इसी प्रकार चौदह, सोलह एवं अट्ठारह हाथ के मण्डपों का भी युक्तियुक्त विभाग कर खम्भों को स्थापित करना चाहिए। पुनः खम्भों का पाँचवाँ भाग अर्थात् एक हाथ जमीन के अन्दर रखना चाहिए। खम्भों का स्थापन अग्निकोण से ही प्रारम्भ करना चाहिए, इसी का समर्थन शारदातिलक के निम्न वचन द्वारा भी किया गया है-

स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके।
खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरे।।

खम्भे के पञ्चम भाग को ही जमीन के भीतर गाड़ने का समर्थन वास्तुशास्त्र में भी किया गया है; जैसे –

पञ्चमांशं खनेद्भूमौ सर्वसाधारणो विधिः।

इस प्रकार मण्डप के बाहरी भाग में बारह खम्भों को स्थापित करने की विधि का प्रतिपादन करने के उपरान्त अब मण्डप के मध्य भाग में प्रधान वेदी के चारो कोणों पर चार खम्भों को स्थापित करने की विधि स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के मध्यवर्ती प्रधान वेदी के चारो कोणों में आठ-आठ हाथ लम्बाई वाले आठ अंगुल चौड़े चूड़ासहित स्तम्भों को प्रदक्षिणा क्रमानुसार अग्निकोण से प्रारम्भ करते हुए स्थापित करना चाहिए। इनका भी पाँचवाँ भाग जमीन के अन्दर रखना चाहिए। स्तम्भों के ऊपरी भाग में लगे चूड़े (साल) बाहरी बारह स्तम्भों में बारह अंगुल के एवं भीतरी चार स्तम्भों में एक हाथ के होते हैं, जिसमें कि पाँच तिर्यक् काष्ठ फँसाये जाते हैं। इस प्रकार एक मण्डप में कुल सोलह स्तम्भ स्थापित किये जाते हैं।

मध्यवर्ती आठ हाथ के स्तम्भों का मान यहाँ सोलह हाथ वाले मण्डप के लिए निर्धारित किया गया है। अन्य छोटे-बड़े मण्डपों के लिए स्तम्भों का मान उनके त्रैराशिक के अनुसार ही करना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रीविद्यार्णवतन्त्रकार का कहना है कि-

वेदीकोणेषु विन्यस्याः स्तम्भाः वेदस्वरूपकाः।
ते चोत्तमे तदर्धोच्चा मध्यमाधमयोः पुनः।।

इस विषय में शारदातिलक में भी इस प्रकार कहा गया है-

षोड़शस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यमाः।
अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः ....।।

इसी प्रकार पाञ्चरात्र भी कहता है कि-

मण्डपार्धोच्छ्रितान् वेदसंख्याश्चूड़ासमन्वितान्।
स्तम्भान् समं च संस्थाप्य स्तम्भद्वादशकं पुनः।।

उपर्युक्त सोलह स्तम्भों की स्थापना नवकोष्ठात्मक तीन विभाग वाले मण्डप के लिए ही निर्धारित है। कुण्डरत्नावलीकार ने मण्डप का विभाग एक भूमि से प्रारम्भ कर दस भूमिपर्यन्त स्वीकार किया है। तीन हाथ से प्रारम्भ कर सात हाथ तक वाले मण्डप का विभाजन नहीं होता। दस हाथ से अट्ठाइस हाथ तक के पाँच विभाग, तीस हाथ से पचहत्तर हाथ तक के सात विभाग एवं तत्पश्चात् सौ हाथ तक के मण्डप के दस विभाग करने चाहिए। उन मण्डपों में स्तम्भ का स्थापन भी विभागानुसार ही करना चाहिए; जैसे कि तीन विभाग वाले मण्डप में सोलह स्तम्भ और पाँच विभाग वाले मण्डप में छत्तीस स्तम्भ सात स्तम्भ स्थापित करने चाहिए।। १८-१९।।

स्तम्भोपरि काष्ठनिवेशनमिन्द्रवज्रयाह-

स्तम्भेषु तिर्यग्वलिकानिधेयाश्चूड़ासु कर्णेष्वथवा बहिस्ताः।
पूर्वापरं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं कोणेऽन्तरा काष्ठचयं निदध्यात्।।२०।।

अन्वयः- (वेद्याः) स्तम्भेषु चूड़ासु अथवा कर्णेषु बहिस्ताः तिर्यग् बलिकाः निधेयाः। (तद्वलिकाः) पूर्वापरं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं (स्यात्) कोणे अन्तरा काष्ठचयं निदध्यात्।। २०।।

(बलदाभाष्यम्) **स्तम्भेषु चतुर्षु चतुर्वेदिस्तम्भेषु द्वादशसु मण्डपस्तम्भेषु च चूडासु शिखासु अथवा कर्णेषु श्रवणेषु बहिरेव बहिस्ताः किञ्चिद्बहिर्गताः तीर्यक् तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा वलिकाः स्तम्भोपरि तीर्यग्निहितकाष्ठ-स्य वलिकेति संज्ञा निधेयाः स्थाप्याः। तद्वलिकाकाष्ठं पूर्वापरं द्वयं दक्षिण-सौम्यदिक्स्थं च द्वयमेवं चतुष्टयं स्यात्। कोणेऽग्निवाय्वोनिर्ऋती-शानयोश्चान्तरान्यत्कष्ठचयं काष्ठसमूहं मण्डपं यथा दृढं स्यात्तथा निदध्यात्स्थापयेत्।। २०।।**

ज्योत्स्ना- प्रधान वेदी के चार एवं बाहरी बारह स्तम्भों के ऊपर बलिका काष्ठस्थापन की विधि स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः प्रधान वेदी के चूड़ा-(शाल)-सहित स्तम्भों में दोनों ओर छिद्रयुक्त तिरछे वलिकाकाष्ठ अर्थात् सरदल लगाना चाहिए; तत्पश्चात् बाहरस्थित बारह स्तम्भों पर भी उसी प्रकार का सरदल लगाया जाता है। इनमें से दो वलिका उत्तर व दक्षिण और दो वलिका पूर्व-पश्चिम में लगाना चाहिए। चार ऐसी वलिकायें, जिनकी लम्बाई मण्डप के विस्तार से कुछ ज्यादा हो, चारो कोणों पर लगाने चाहिए तथा चार ऐसी वलिकायें जिनकी लम्बाई मध्यस्थित प्रधान वेदी से कुछ ज्यादा हो, मण्डप के मध्य में शिखर बनाकर उसी को आधार बनाकर प्रधान वेदी के चारो कोणों पर लगाना चाहिए। इस प्रकार मण्डप में कुल बत्तीस वलिकायें लगाई जाती हैं।

उपर्युक्त विधि से निर्धारित वलिकाओं को लगाने के पश्चात् मण्डप को पूर्णतः सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यकतानुसार और वलिकाओं को भी जगह-जगह लगाना चाहिए। कतिपय विद्वान् इनकी संख्या छत्तीस भी बताते हैं।

इसी प्रकार पञ्चधा विभाजित मण्डप में बहत्तर वलिकायें; सप्तधा विभाजित मण्डप में एक सौ अट्ठाइस वलिकायें तथा दशधा विभाजित मण्डप में दो सौ चालीस (कोणशिखर की बीस एवं दो सौ बीस अन्य) वलिकायें लगायी जाती हैं। वलिका-स्थापन के विषय में विभिन्न शास्त्रों के वचन इस प्रकार हैं-

वलिकाश्चोर्ध्वगास्तेषाम् । (पञ्चरात्र)

द्वात्रिंशत् स्तम्भचूड़ाष्ववनयवलिकाः। (कुण्डार्क)

स्तम्भों के लिए पीपल, वट, गूलर, पाकड़ आदि यज्ञीय वृक्षों एवं बाँस, सुपारी, आम्र आदि पवित्र वृक्षों के काष्ठ का ही प्रयोग करना चाहिए। इस सम्बन्ध में

क्रियासार में कहा भी गया है-

वृक्षः स्याद्यज्ञियो वेणुः क्रमुकः स्तम्भकर्मणि।
अन्ये विशुद्धवृक्षा वा भवेयुर्नान्यभूरुहाः।।

यज्ञीय वृक्षों का वर्णन वायुपुराण में इस प्रकार से प्राप्त होता है-

पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः।
उदुम्बरास्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये।।

मण्डपस्तम्भों में प्रयुक्त नहीं किये जाने वाले काष्ठों का विवेचन भी क्रियासार में प्राप्त होता है, जो कि निम्नवत् है-

गृहशल्यः स्वयंशुष्कः कुटिलश्च पुरातनः।
असौम्यभूमिजनितः सन्त्याज्यः स्तम्भकर्मणि।। २०।।

मध्यभागाच्छादनं रथोद्धतयाह-

मध्यभागशिखरं रचयित्वा छादयेदपि कटैर्ऋजुवंशैः।
द्वारवर्जमिहमण्डपमेनं स्तम्भकानपि सुवस्त्रसमूहैः।।२१।।

अन्वयः- मध्यभागशिखरं रचयित्वा इह एवं मण्डपं कटैः ऋजुवंशैः अपि द्वारवर्जं छादयेत्। स्तम्भकान् अपि सुवस्त्रसमूहैः (छादयेत्)।। २१।।

(बलदाभाष्यम्) **मध्यभागे मण्डपस्य मध्ये शिखरं शृङ्गम् (कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गमित्यमरः)। रचयित्वा कृत्वा कटैः ऋजुवंशैः सरलवंशैरपीहात्र द्वारवर्जं द्वाररहितमित्यनेनाभितोऽपि छादनं सूचितं येन शूद्रादिदृष्टिदूषितं कर्म न भवेत् छादयेत्। सुवस्त्रसमूहैः वस्त्राद्यलङ्कारकवस्तुजातैः स्तम्भकानपि छादयेदलंकुर्यादित्यर्थः। तथाह क्रियासारे-**

नारिकेलदलैर्वापि पल्लवैर्वापि वेणुभिः।
आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जन्तु सर्वतः।। **इति।**

वास्तुशास्त्रे- कटैः सद्भिस्तु सञ्छाद्या विजयाद्यास्तु मण्डपाः।। **इति।**

हयग्रीवपञ्चरात्रे- दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान्वस्त्रैर्विभूषयेत्। **इति।।२१।।**

ज्योत्स्ना- पूर्वरीति से निर्मित मण्डप को आच्छादित करने की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के ऊपर मध्य भाग में शिखर (गुंबद) का निर्माण कर समस्त मण्डप को चटाइयों, कोमल बाँसों अथवा पुआल-फूस इत्यादि से आच्छादित कर देना चाहिए। तत्पश्चात् चारो दिशाओं में स्थित द्वारों को छोड़कर शेष मण्डप को बाहर से भी चटाइयों से घेर देना चाहिए। साथ ही मण्डपस्थित स्तम्भों में विविध रंग के वस्त्र लपेट देने चाहिए एवं भीतरी भाग में जगह-जगह शीशा, चँवर, घण्टे आदि लटकाकर मण्डप को पूर्णतया सुसज्जित बना देना चाहिए। मण्डपाच्छादन एवं उसे

सुसज्जित करने के सन्दर्भ में निम्न प्रमाण भी प्राप्त होते हैं-

नारिकेलदलैर्वाऽपि पल्लवैर्वाऽपि वेणुभिः।
आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जं तु सर्वतः।। (क्रियासार)
कटैः सद्भिस्तु सञ्छाद्या विजयाद्यास्तु मण्डपाः। (वास्तुशास्त्र)
दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान् वस्त्रैर्विभूषयेत्। (हयग्रीवपञ्चरात्र)

वसन्ततिलकया तोरणान्याह-

पूर्वादिदिक्षु रचयेदपि तोरणानि न्यग्रोधजन्तुफलपिप्पलवृक्षराजैः।
अश्वत्थजन्तुफलपर्कटिभूरिपद्भिर्वेषामभावत इमान्यथवैककेन।।२२।।

अन्वयः- (मण्डपस्य) पूर्वादिदिक्षु न्यग्रोधजन्तुफलपिप्पलवृक्षराजैः अश्वत्थजन्तुफलपर्कटिभूमिपद्भिः अपि तोरणानि रचयेत्। अथवा एषाम् अभावतः एककेन इमानि (रचयेत्)।। २२।।

(बलदाभाष्यम्) **पूर्वादिदिक्षु पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरेषु क्रमेण न्यग्रोधो वटः जन्तुफलमौदुम्बरः पिप्पलः प्रसिद्धः वृक्षराजः प्लक्ष एभिर्वाऽश्वत्थः पिप्पलः (बोधिद्रुमश्चलदलः पिप्पलः कुञ्जराशनः। अश्वत्थ इत्यमरः)। जन्तुफलमौदुम्बरः (उदुम्बरो जन्तुफलमित्यमरः)। पर्कटिः (प्लक्षो जटि पर्कटिः स्यादित्यमरः)। भूरिपाद्वटः (न्यग्रोधो बहुपाद्वट इत्यमरः)। एभिस्तोरणानि द्वारविशेषाण्यपि निश्चयेन रचयेत्। तथोक्तं महाकपिलपञ्चरात्रे-**

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
विघ्नविध्वंशनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च।
न्यसेन्न्यग्रोधमैन्द्र्यान्तु याम्यां चौदुम्बरं तथा।
वारुण्यां पिप्पलं चैव कौबेर्यां प्लक्षजं न्यसेत्।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि च।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्।

अथवैषामुक्तकाष्ठानामभावतोऽलाभात्तदेकतमेनेमानि तोरणानि रचयेत्। तथोक्तं पञ्चरात्रे-

अलाभेष्वेकमेवैषां सर्वाशासु निवेशयेत्। **इति।। २२।।**

ज्योत्स्ना- मण्डप के चारो दिशाओं में स्थित दरवाजों से एक हाथ हटकर तोरण बनाये जाते हैं; इसीलिए इन्हें बाहरी द्वार कहा जाता है- **तोरणन्तु बहिर्द्वारम्।** इन तोरणद्वारों को बनाने हेतु काष्ठों का निर्धारण भी किया गया है। उसे ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पूर्व दिशा में वट अथवा पीपल, दक्षिण में गूलर, पश्चिम में पीपल

अथवा पाकड़ एवं उत्तर में पाकड़ अथवा वट की लकड़ी का तोरणद्वार बनाना चाहिए। यदि चारो वृक्षों की लकड़ियाँ उपलब्ध न हों तो उनमें से किसी एक ही वृक्ष की लकड़ी से चारो तोरणद्वारों का निर्माण करना चाहिए।

तोरणों के वैशिष्ट्य एवं उनमें प्रयोग की जाने वाली लकड़ियों का प्रतिपादन करते हुए महाकपिलपञ्चरात्र में कहा भी गया है –

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
विघ्नविध्वंसनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च।।
न्यसेन्न्यग्रोधमैन्द्र्यां तु याम्यां चौदुम्बरं तथा।
वारुण्यां पिप्पलं चैव कौवेर्यां प्लक्षजं न्यसेत्।।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि च।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्।।

निर्धारित वृक्षों की लकड़ियाँ न प्राप्त होने पर किन वृक्षों की लकड़ियों से तोरण-निर्माण करना चाहिए, इस विषय में सिद्धान्तशेखर में इस प्रकार कहा गया है-

एकमेषामलाभे स्यात्तदभावे शमीद्रुमः।
जम्बूखदिरसाराश्च तालो वा तोरणे स्मृतः।।

लकड़ियों की स्थिति के सन्दर्भ में क्रियासार में इस प्रकार कहा गया है-

अवक्राः सत्वचः सार्द्रा दण्डाः स्युस्तोरणे शुभाः।। २२।।

तोरणमानं तन्निवेशनं च विपरीताख्यानक्याह-

हस्ताद्बहिर्मण्डपतः शराङ्गस्वरैः करैस्तान्यधमादिकेषु।
दीर्घाणि च प्राहुरथायतिः स्यात्तेषां द्विहस्ता चरणप्रवृद्ध्या।।२३।।

अन्वयः- मण्डपतः हस्ताद् बहिः च अधमादिकेषु तानि शराङ्गस्वरैः करैः दीर्घाणि प्राहुः। अथ तेषाम् आयतिः द्विहस्ता चरणप्रवृद्ध्या स्यात्।। २३।।

(बलदाभाष्यम्) **मण्डपतो मण्डपद्वारतो हस्तादेकहस्ताद्बहिरन्तरे चात्पुनः अधमादिकेषु अधममध्यमोत्तमेषु मण्डपेषु क्रमेण शराः पञ्च ५ अङ्गानि षट् ६ स्वराः सप्त ७ एतन्मितैः करैर्हस्तैर्दीर्घाणि प्राहुराचार्या इति शेषः। तथा चाग्नेये–**

पञ्चषट्सप्तहस्तानि हस्तखाते स्थितानि च। **इति।**

अथ चरणश्चतुर्थांशोऽनुक्तत्वादेकहस्तचतुर्थांशः षडंगुलं तस्य प्रवृद्ध्या द्विहस्ता हस्तद्वयं तेषां तोरणानामायतिर्विस्तारः स्यात्। एतदुक्तं भवति अधममण्डपे हस्तद्वयं मध्यमे षडंगुलाधिकं हस्तद्वयमुत्तमे सार्धहस्त-

द्वयमिति। तथोक्तं वास्तुशास्त्रे–

पञ्चहस्तप्रमाणास्ते विस्तारेण द्विहस्तकाः।
षडंगुलाभिवृद्ध्या च सप्तहस्तास्तथोत्तमः।। **इति।। २३।।**

ज्योत्स्ना– तोरण के मान (लम्बाई–चौड़ाई) एवं उसके स्थान का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि मण्डप के द्वार से एक हाथ की दूरी पर तोरण को स्थापित करना चाहिए। ये तोरण अधम, मध्यम और उत्तम भेद वाले मण्डपों के लिए क्रमशः पाँच हाथ, छः हाथ एवं सात हाथ लम्बे होने चाहिए। इनकी चौड़ाई अधम मण्डप में दो हाथ, मध्यम में दो हाथ छः अंगुल एवं उत्तम में दो हाथ बारह अंगुल रखनी चाहिए। प्रत्येक तोरणों में काष्ठों की संख्या तीन होती है– दो स्तम्भ और एक वलिका। इसलिए तोरणों की लम्बाई का निर्धारण वलिका को लेते हुए ही करना चाहिए। अन्य द्वारों की तरह ही इनकी मोटाई भी दस अंगुल की ही रखनी चाहिए, जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है– **दशांगुलप्रमाणेन तत्परीणाह ईरितः।**

उक्त तोरण के स्तम्भों का पाँचवाँ भाग जमीन के अन्दर गाड़ना चाहिए, जो कि क्रमशः अधम में एक हाथ, मध्यम में एक हाथ, चार अंगुल, छः यव एवं उत्तम में एक हाथ, चार अंगुल, चार यव और चार यूका होता है।। २३।।

फलकादिनिवेशनमुपजातीन्द्रवज्राभ्यामाह–

स्तम्भार्धमानं फलकन्तु तीर्यङ्नवेशविश्वप्रमितांगुलाश्च।
तन्मूर्न्धि कीलाः स्वतुरीयभागैस्ततास्तु शूलाकृतयश्च ते स्युः।।२४।।
तद्वेशनं द्वित्रियुगांगुलानि शैवे तु विष्णोर्यजनेऽङ्गुलर्द्धिः।
कीलेषु शंखारिगदाम्बुजाङ्केष्विष्वंशरोपः किलतोरणेषु।।२५।।

अन्वयः– तु (स्तम्भोपरि) स्तम्भार्धमानं तिर्यक् फलकं (निवेश्यम्)। च तन्मूर्ध्नि नवेशविश्वप्रमितांगुलाः स्वतुरीयभागैस्तताः कीलाः (निवेश्याः)। तु ते शूलाकृतयः स्युः। शैवे यजने द्वित्रियुगांगुलानि तद्वेशनं (स्यात्), तु विष्णोर्यजने अंगुलर्द्धिः (स्यात्)। शङ्खारिगदाम्बुजांकेषु कीलेषु तोरणेषु किल इष्वंशरोपः (स्यात्)।। २४-२५।।

(बलदाभाष्यम्) **तु पुनः स्तम्भस्य तोरणस्तम्भस्यार्धेन मीयते तोल्यत इति स्तम्भार्धतुल्यमित्यर्थः। फलकं स्तम्भोपरि तीर्यग्निहितकाष्ठस्य फलकमिति संज्ञा, तीर्यक् तिरश्चीनतया, निवेश्यमिति शेषः। तथोक्तं शारदातिलके–**

तीर्यक् फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्धमानतः।। **इति।**

चात्पुनस्तस्य फलकस्य मूर्ध्नि शिरस्यधमादिमण्डपक्रमेण नव प्रसिद्धाः

ईशा एकादश विश्वस्त्रयोदशैतत्प्रमितांगुला दीर्घास्तथा स्वस्य दैर्घ्यस्य तुरीयभागैश्चतुर्थांशैस्तता विस्तृताः (विसृतं विस्तृतं ततमित्यमरः)। कीलका निवेश्या इत्यध्याहारः। तु पुनस्ते कीलकाः शूलाकृतयः सूच्यग्राकृतयः स्युरिति। तथोक्तं मन्त्रमुक्तावल्याम्–

अग्रयोर्मध्यभागे च पट्टिकायां त्रिशूलकम्। इति।

पिङ्गलामते–शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके।
शूले नवांगुले दैर्घ्ये तुरीयांशेन विस्तृतिः।।
ऋजु वै मध्यशृङ्गं स्यात्किञ्चिद्वक्रं तु पक्षयोः।
प्रथमं तत्समाख्यातं द्व्यंगुलं रोपयेत्तथा।
शेषाणां द्व्यंगुला वृद्धिर्वंशाच्चांगुलवृद्धितः।। इति।

शैवे यजने यज्ञे मण्डपक्रमेण द्वित्रियुगांगुलानि प्रसिद्धानि तस्य कीलकस्य वेशनं फलके प्रवेशनं निखननमिति यावत्स्यात्। तु पुनः विष्णोर्यजने यागे शैवोक्तकीलकायामदैर्घ्यप्रवेशनेष्वंगुलर्द्धिरंगुलवृद्धिः कार्येति शेषः। एतत्सर्वं चक्रेऽवलोक्यम्। पूर्वत इत्यध्याहारः शङ्खः प्रसिद्धोऽरिश्चक्रम् गदा दण्डविशेषोऽम्बुजं कमलमेभिरङ्कैष्वचिह्नितेषु चिह्नितेष्विति यावत् कीलेष्वर्थात्कीलोपलक्षितेषु तोरणेषु किल निश्चायेन, वास्तुशास्त्रे–

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम्।। इति।
इष्वंशस्तोरणस्य पञ्चमांशोरोपोभूमौ निखननं स्यात्।
पञ्चमाशं न्यसेद्भूमौ सर्वसाधारणो विधिः।। इति।।२४-२५।।

ज्योत्स्ना– स्तम्भों के ऊपर लगाई जाने वाली तिरछी पट्टी को फलक के नाम से जाना जाता है। जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है–

तिर्यक् फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्धमानतः।

उन फलकों को स्थापित करने की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि उस फलक के दोनों ओर एवं मध्य में इस प्रकार कुल तीन छिद्र करवा कर उसे स्तम्भ के चूड़े में लगा देना चाहिए। ये फलक क्रमशः पाँच हाथ के स्तम्भों में ढ़ाई (२-१/२) हाथ के; छः हाथ के स्तम्भों में तीन हाथ के और सात हाथ के स्तम्भों में साढ़े तीन (३-१/२) हाथ के होते हैं। इन फलकों के दोनों छोरों पर तथा मध्य में एक-एक लकड़ी की ही कील लगा देनी चाहिए। इस प्रकार करने से तोरण त्रिशूल की आकृति वाला बन जाता है। जैसा कि मन्त्रमुक्तावली में कहा भी गया है–

अग्रयोर्मध्यभागे च पट्टिकायां त्रिशूलकम्।

त्रिशूलाकर तोरण का निर्माण शैव याग में किया जाता है तथा शिवपरिवार अर्थात् देवी, गणेश आदि के यागों में भी त्रिशूलाकर तोरण ही बनाये जाते हैं।

विष्णुयाग में उन कील लगे तोरणों पर क्रमशः पूर्व दिशा में शंख, दक्षिण में चक्र, पश्चिम में गदा एवं उत्तर में पद्म का स्थापन करना चाहिए। इस सम्बन्ध में वास्तुशास्त्र में इस प्रकार कहा गया है-

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम्।।

शैवयागों में तोरण के ऊपर स्थापित फलक पर लगाये जाने वाले तीन कीलों का माप-प्रमाण इस प्रकार है- अधममण्डप में नौ अंगुल लम्बा, सवा दो (२-१/४) अंगुल चौड़ा और दो अंगुल तोरणफलक के भीतर; मध्यममण्डप में ग्यारह अंगुल लम्बा, पौने तीन (२-३/४) अंगुल चौड़ा एवं तीन अंगुल तोरणफलक के भीतर तथा उत्तम मण्डप में तेरह अंगुल लम्बा, सवा तीन (३ १/४) अंगुल चौड़ा एवं चार अंगुल तोरणफलक के मध्य में रखना चाहिए। इस सन्दर्भ में पिङ्गलामत में इस प्रकार कहा गया है-

शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके।
शूले नवांगुलैर्दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः।।
ऋजु वै मध्यशृङ्गं स्यात्किञ्चिद्वक्रं तु पक्षयोः।
प्रथमं तत्समाख्यातं द्व्यंगुलं रोपयेत्तथा।।
शेषाणां द्व्यंगुला वृद्धिर्वेशश्चांगुलवृद्धितः।।

वैष्णवयाग में लगाये जाने वाले कीलों का मापप्रमाण अधममण्डप में दस अंगुल लम्बा, सवा तीन (३-१/४) अंगुल चौड़ा और तीन अंगुल तोरण-फलक के भीतर; मध्यम में बारह अंगुल लम्बा, पौने चार (३-३/४) अंगुल चौड़ा और चार अंगुल तोरणफलक के भीतर एवं उत्तम में चौदह अंगुल लम्बा, सवा चार (४-१/४)अंगुल चौड़ा एवं पाँच अंगुल तोरणफलक के मध्य में रखना चाहिए। विष्णु-याग में कीलों की लम्बाई-चौड़ाई एवं उनके स्थापन का यह क्रम शैवयाग से एक-एक अंगुल वृद्धि करते हुए कहा गया है। द्वारस्तम्भों के रोपण में पूर्ववत् प्रक्रिया का आश्रयण करते हुए पञ्चमांश को ही जमीन के अन्दर गाड़ना चाहिए।

पदार्थादर्शकार ने त्रिशूल को हस्तप्रमाण माना है एवं तीन अंगुल निवेश तथा मोटाई छठा भाग हो- यह कहा है। साथ ही प्रति तोरण एक-एक कलश, प्रति द्वार दो-दो एवं आग्नेयादि कोणों में भी एक-एक कलश स्थापित करने का निर्देश दिया

है; जैसा कि वे कहते हैं-

गन्धपुष्पाम्बरोपेतान् कुम्भांस्तेषु विनिक्षिपेत्।
ध्रुवं धरां वाक्पतिं च विघ्नेशं तत्र पूजयेत्।।
मण्डपस्य तु कोणस्य कलशेषु क्रमादमी।
अमृतो दुर्जयश्चैव सिद्धार्थो मङ्गलस्तथा।।
पूज्या द्वारस्थकुम्भेषु शक्राद्यास्तन्मनूत्तमैः।।

अग्निपुराण में प्रति तोरण दो-दो कलशों की स्थापना करने का निर्देश प्राप्त होता है; जैसा कि कहा गया है-

तच्छाखामूलदेशस्थौ प्रशान्तशिशिरौ घटौ।
पर्जन्याशोकनामानौ भूतसञ्जीवनामृतौ।
धनदश्रीप्रदौ तद्वत्पूजयेदनु पूर्वशः।। २५-२६।।

कीलकचक्रम्

	शैवयागे						विष्णुयागे					
मण्डप	दैर्घ्य		विस्तार		रोपण		दैर्घ्य		विस्तार		रोपण	
	अं	य	अं	य	अं	य	अं	य	अं	य	अं	य
अधम	ह्ल	ङ्ह	द्र	द्र	द्रङ्ह		ग्ङ्ह	ङ्ह	ज्द्र	ज्र ङ्ह		
मध्यम	ग्र	ङ्ह	द्र	द्ध	ज्रङ्ह		ग्द्र	ङ्ह	ज्द्ध	ष्ट ङ्ह		
उत्तम	ग्र	ङ्ह	ज्र	द्र	ष्ट	ङ्ह	ग्ष्ट	ङ्ह	ष्ट	द्र	ॽ	ङ्ह

ध्वजनिर्माणं विपरीताख्यानक्याह-

ध्वजान् द्विहस्तायतिकांश्च पञ्च हस्तान्सुपीतारुणकृष्णनीलान्।
श्वेतासितश्वेतसितान्दिगीशवाहान्वहेद्दिक्करवंशशीर्षे ।।२६।।

अन्वयः- द्विहस्तायतिकान् च पञ्चहस्तान् (दीर्घान्) सुपीतारुणकृष्णनीलान् श्वेतासितश्वेतसितान् दिगीशवाहान् ध्वजान् दिक्करवंशशीर्षे वहेत्।। २६।।

(बलदाभाष्यम्) **आयतिरेवायतिकः द्वौ हस्तावायतिकौ येषां तानर्थाद्ध-स्तद्वयविस्तृतान्। चात्पुनः पञ्चहस्तान् पञ्चहस्तदीर्घान् सुपीतः पीतोऽरुणो रक्तः कृष्णः प्रसिद्धो नीलश्वेतावपि प्रसिद्धौ असितः कृष्णः श्वेतसितौ प्रसिद्धावेभिर्वर्णैरुपलक्षितान्। तथा दिगीशानामष्टानां ये वाहा वाहनानि**

मातङ्गाजमहिषसिंहमत्स्यैणवाजिवृषभाद्येषु तानर्थात्स्वस्ववाहाङ्कितान् ध्वजान्। तथोक्तं प्रतिष्ठासारसंग्रहे–

मातङ्गवस्तमहिषसिंहमत्स्यैणवाजिनः ।
वृषभं च यथान्यायं ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत्।। इति।

दिग्भिः करैस्तुल्यो यो वंशस्तस्य शीर्षे मस्तके वहेत्स्थापयेदिति।।२६।।

ज्योत्स्ना– मण्डप के ऊपर लगने वाले ध्वजाओं का मान, उनके रंग और उन पर बनाये जाने वाले चिह्नों का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि ध्वजा त्रिकोण आकृति की होनी चाहिए, जो कि दो हाथ चौड़ी एवं पाँच हाथ लम्बी हो। ये ध्वजायें स्थानानुसार तत्तत् लोकपालों के वर्ण से रञ्जित होनी चाहिए। जैसे- पूर्व दिशा की ध्वजा का रंग पीला, अग्निकोण का लाल, दक्षिण का काला, नैर्ऋत्य कोण का नीला, पश्चिम का सफेद, वायुकोण का धूम्र अथवा हरित, उत्तर का सफेद एवं ईशान कोण की ध्वजा का रंग श्वेत होना चाहिए। इनके अतिरिक्त ईशान-पूर्व के मध्य में लाल एवं नैर्ऋत्य-वरुण के मध्य में श्वेत ध्वजा लगानी चाहिए। इन ध्वजाओं को तत्तत् लोकपालों के वाहनों के चिह्नों से चिह्नित भी करना चाहिए। लोकपालों के वाहन क्रमशः हाथी, अजा (मेष), महिष, सिंह, मत्स्य, मृग, अश्व एवं वृष हैं। अतः पूर्वादि दिशाओं से प्रारम्भ कर सभी ध्वजाओं को क्रमशः तत्तत् दिशाओं के स्वामी के वाहनों से चिह्नित कर देना चाहिए। इनके अतिरिक्त ईशान-पूर्व के मध्य की ध्वजा को हंस तथा नैर्ऋत्य-वरुण के मध्य की ध्वजा को गरुड़ के चिह्न से चिह्नित करना चाहिए।

इन ध्वजाओं को दस हाथ के बाँस के ऊपर बांधकर पूर्वादि द्वारों एवं आग्नेयादि कोणस्तम्भों के समीप स्थापित करना चाहिए तथा इनके ध्वजाओं के पञ्चमांश को भूमि में गाड़ना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि ध्वजाओं को जमीन के अन्दर दो हाथ गाड़ना चाहिए। ध्वजाओं के सन्दर्भ में प्रतिष्ठासारसंग्रह में इस प्रकार कहा गया है-

पीतरक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्तध्वजाः स्मृताः।
द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैस्ते वंशजैः संयुता मता।।

ध्वजाओं पर बनाये जाने वाले चिह्नों को भी क्रियासार में स्पष्ट किया गया है; जो कि इस प्रकार है-

मातङ्गबत्समहिषसिंहमत्स्यैणवाजिनः ।
वृषभं हंसगरुडौ ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत्।।

दस दिक्पाल पक्ष में नवीं एवं दशवीं ध्वजा का रंग लाल एवं सफेद ही रखना चाहिए, अन्य नहीं। जैसा कि कहा भी गया है-

अथापि वा नेत्र करोन्मितास्ते नखांगुलैरायतिकास्तथा च।

सर्वेऽथवा बाहुमिता ध्वजाः स्युः सूर्याग्रलैरायतिका दशैव।
पक्षे यदा दिक्प्रमितास्तदा तु रंध्रस्तु रक्तो दशमः सितश्च।।

ध्वजारोपण का फल पञ्चरात्र में इस प्रकार बताया गया है-

यत्कृत्वा पुरुषः सम्यक् समस्तफलमाप्नुयात्।

साथ ही ध्वजारोपण न करने पर पञ्चरात्र में ही निम्न दोष भी बताया गया है-

चिन्तयन्त्यसुरश्रेष्ठा ध्वजहीनं सुरालयम्।
ध्वजेन रहिते ब्रह्मन् मण्डपे तु वृथा भवेत्।
पूजाहोमादिकं सर्वं जपाद्यं यत्कृतं बुधैः।।२६।।

ध्वजपताकानिवेशनमिन्द्रवज्रानुष्टुब्भ्यामाह-

लोकेशवर्णास्त्रयुताः पताकाः शैलेन्दुदैर्घ्यायतिकाश्च मध्ये।
चित्रं ध्वजं दिक्करदैर्घ्यवंशे त्रिदोस्ततं प्रान्तगकिंकिणीकम्।।२७।।
श्वेतां च नवमीं पूर्वेशानयोर्मध्यतो बुधः।
विन्यसेत्तु पताकांश्च ध्वजांस्तानपि पूर्वतः।।२८।।

अन्वयः- लोकेशवर्णास्त्रयुता शैलेन्दुदैर्घ्यायतिकाः पताकाः (विन्यसेत्) मध्ये च प्रान्तगकिङ्किणीकं त्रिदोस्ततं चित्रं ध्वजं दिक्करदैर्घ्यवंशे (विन्यसेत्) बुधः च पूर्वेशानयोः मध्यतः नवमीं श्वेतां पताकां विन्यसेत्। च तान् ध्वजान् अपि पूर्वतः (विन्यसेत्)।। २७-२८।।

(बलदाभाष्यम्) **लोकेशानां दिगीशानां ये वर्णाः प्रागुक्ताः सुपीतादयो यानि चास्त्राण्यायुधानि वज्रशक्तिदण्डखड्गपाशांकुशगदात्रिशूलानि ताभ्यां युताचिह्निातास्तथा शैलाः सप्तेन्दुरेकः एतत्प्रमितैर्हस्तैदैर्घ्यायतिकौ दैर्घ्यविस्तारौ यासां ता अर्थात्सप्तहस्तदैर्घ्याः हस्तैकविस्तृताः पताकाः। दशहस्तवंश-शीर्षगाः कार्या इति पूर्वश्लोकेनाध्याहारः। चात्पुनर्मध्ये मण्डपस्य मध्येऽर्था-च्छिखरे प्रान्तगकिङ्किणीकमुपान्तभागे स्यूतकिङ्किणीकं त्रिभिर्दोर्भिर्हस्तैस्ततं विस्तृतमनुक्तत्वादेतावदेव दैर्घ्यं चित्रमनेकवर्णदुकूलनिर्मितं ध्वजं दिक्कर-दैर्घ्यवंशे दशहस्तवंशशीर्षे कार्यम्। च पुनः बुधस्तान् ध्वजान्पताकांश्चापि पूर्वतो विन्यसेत् स्थापयेदिति।। २७-२८।।**

ज्योत्स्ना- विद्वान पुरुषों को दिक्पालों के पूर्वोक्त पीतादि वर्ण एवं उनके अस्त्र (वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, कमण्डलु और चक्र) से समन्वित सात हाथ लम्बी एवं एक हाथ चौड़ी पताका को दस हाथ के बांस में लगाकर स्थापित करना चाहिए। इन पताकाओं को धारण करने वाले दस हाथ के बांसों का पाँचवाँ हिस्सा अर्थात् दो हाथ भूमि में गाड़ना चाहिए। आशय यह है कि पूर्व दिशा

की पताका पीत वर्ण की एवं वज्र से चिह्नित, अग्निकोण की लाल वर्ण की एवं शक्ति से चिह्नित, दक्षिण दिशा की काले वर्ण की एवं दण्ड से चिह्नित, नैर्ऋत्य कोण की नीले वर्ण की एवं खड्ग से चिह्नित, पश्चिम दिशा की श्वेत वर्ण की एवं पाश से चिह्नित, वायव्य कोण की धूम्र वर्ण की एवं अंकुश से चिह्नित, उत्तर दिशा की श्वेत वर्ण की एवं गदा से चिह्नित, ईशान कोण की श्वेत वर्ण की एवं त्रिशूल से चिह्नित, ईशान-पूर्व के मध्य की श्वेत अथवा लाल वर्ण की तथा कमण्डलु से चिह्नित एवं नैर्ऋत्य-पश्चिम के मध्य की श्वेत अथवा मेघवर्ण की एवं चक्र से चिह्नित पताका होनी चाहिए। मण्डप के मध्य शिखर से संलग्न कर अथवा ईशान कोण में दस हाथ लम्बा और तीन हाथ चौड़ा अनेक वर्ण के वस्त्रों से निर्मित एक महाध्वज स्थापित करना चाहिए, जिसके छोर पर घण्टी, घुंघुरु और चँवर बँधा हो और जिसका बाँस दस, सोलह, इक्कीस या बत्तीस हाथ लम्बा हो। मध्यवर्ती ध्वज को जिस देवता की प्रतिष्ठा अथवा यज्ञ हेतु मण्डप-निर्माण किया गया हो उसी के वाहन से चिह्नित करना चाहिए। ध्वजदण्डों के सम्बन्ध में कहा भी गया है-

ध्वजदण्डस्तु कर्तव्यो द्वात्रिंशद्धस्तसम्मितः।

पताकाओं के वर्ण एवं उन पर चिह्नित किये जाने वाले आयुधों के सन्दर्भ में शास्त्रों में इस प्रकार बताया गया है-

स्यादिन्द्रः करिवाहनः कुलिशभृत्प्राचां पिशङ्गद्युति-
स्त्वाग्नेय्यामजवाहनोऽजरुचिः शक्त्या युतो हव्यवाट्।
याम्यां दण्डकरो यमश्च महिषारुढोऽञ्जनाभस्तथा
नैर्ऋत्यां करवालभृन्निर्ऋतिजः सिंहाधिरुढोऽसितः।।
वारुण्यां झषगो हिमद्युतिरणं नाथश्च पाशान्वितो
वायव्यां मृगवाहनोंऽकुशकरो वायुः शुकाभः स्मृतः।
कौवेर्यां नरवाहनो दिशि गदापाणिर्विचित्रस्तदा
रौद्र्यां सद्वृषवाहनः शशिनिभः स्याच्छङ्करः शूलभृत्।।
हंसस्थोऽरुणकः कमण्डलुकरः शक्रेशयोरन्तरा-
ऽनन्तोऽपांपतिरक्षसोर्घननिभस्ताक्ष्योधिरूढोऽरिभृत् ।।

दिशाओं के क्रम से ध्वजा तथा पताका को स्थापित करने का स्थान क्रम इस प्रकार है-

पूर्वद्वार - उत्तर शाखा में ध्वज और दक्षिण शाखा में पताका।
अग्निकोण - पूर्व में ध्वज एवं दक्षिण में पताका।
दक्षिणद्वार - पूर्व में ध्वज एवं पश्चिम में पताका।
नैर्ऋत्यकोण - दक्षिण में ध्वज एवं उत्तर में पताका।

पश्चिमद्वार – दक्षिण में ध्वज एवं उत्तर में पताका।
वायव्यकोण – पश्चिम में ध्वज एवं उत्तर में पताका।
उत्तरद्वार – पश्चिम में ध्वज एवं पूर्व में पताका।
ईशानकोण – उत्तर में ध्वज एवं पूर्व में पताका।
पूर्व-ईशान का मध्य – उत्तर में ध्वज एवं दक्षिण में पताका।
नैर्ऋत्य-पश्चिम का मध्य – दक्षिण में ध्वज एवं उत्तर में पताका।

मण्डप वेदी की रचना में प्रयुक्त पाँच रंग पृथिवी आदि महाभूतों के प्रतीक स्वीकार किये गये हैं। रंगों के अधिपति देवता कहे गये हैं, जैसा कि पदार्थादर्श में कहा भी गया है-

पीतं क्षितिस्तु विज्ञेया शुक्लमापः प्रकीर्तिताः।
तेजो वै रक्तवर्णं स्याच्छ्यामो वायुः प्रकीर्तितः॥
आकाशं कृष्णवर्णन्तु पञ्चमं तु महामुने।
सितेऽधिदेवता रुद्रो रक्ते ब्रह्माधिदेवता॥
पीतेऽधिदेवता विष्णुः कृष्णे चैवाच्युतः स्मृतः।
श्यामेऽधिदेवता नागः समाख्यातो मयाऽनघ॥
शुक्लं ग्रहापदो हन्ति रक्तं क्रूरगणोद्भवम्।
कृष्णं सर्वासुरोत्साहं नीलं वैनायकीं तथा॥
पैशाचीं राक्षसीं चैव निघ्नन्ति हरितं रजः॥
तस्माद्धोमेऽभिषेके च यागे चैव विशेषतः।
वर्त्तयेन्मण्डलं तैस्तु देवसन्तुष्टिकारकम्॥

शक्तस्तु वाञ्छेद्यदि सिद्धिमुग्रां तद्वर्णरत्नैरिह मण्डलानि।
आभूषयेन्मौक्तिकपुष्परागमाणिक्यनीलैर्हरितैश्च रत्नैः॥ २७-२८॥

मण्डपालङ्करणानि वदन्मण्डपकारयितृभ्य
आशिषं शार्दूलविक्रीडितेनाह-

उद्यत्पत्रफलातिनम्रविलसत् रम्भाभिरालिङ्गितः
स्तम्भोऽनेकदलै रसालविटपैः सर्वत्र संवेष्टितः।
राजत् चामरसम्प्रबद्धमुकुरोदञ्चद्वितानान्वितो
युक्तः पुष्पफलैर्फलाय भवतां भूयान्महामण्डपः॥२९॥

अन्वयः- उद्यत् पत्रफलातिनम्रविलसत् रम्भाभिः आलिङ्गितः स्तम्भः सर्वत्र अनेकदलैः रसालविटपैः संवेष्टितः राजत् चामरसम्प्रबद्धमुकुरोदञ्चद् वितानान्वितः पुष्पफलैः युक्तः महामण्डपः भवतां फलाय भूयात्॥ २९॥

(बलदाभाष्यम्) उद्यन्त्युन्नतानि पत्राणि यासां तास्तथा फलैरतिनम्रा

अत एव विलसन्त्यः शोभिता या रम्भाः कदल्यस्ताभिरालिङ्गितः कुक्षौ कृतः स्तम्भो यस्य सः तथा सर्वत्राभितो रसालानामाम्राणां ये विटपा वृक्षास्तैरर्थात्तदुद्भवैरनेकदलैः पत्रसमूहैः संवेष्टित आवृत्तस्तथा राजन्ति दीप्यमानानि यानि चामराणि तैस्तथा सं सम्यक् प्रकर्षेण दृढ़ेन बद्धा जटिता ये मुकुरा आदर्शास्तैस्तथा उदूर्ध्वमञ्चन्ति स्फुरन्ति यानि वितानानि तैश्चान्वितो युक्तः पुष्पफलैश्चापि युक्तो महामण्डपो भवतां फलायोत्तम-फलप्राप्तये भूयादिति। यत उक्तं सिद्धान्तशेखरे-

आख्यातसाधनैः क्लृप्तः सरलः सुसमानकः।
मनोज्ञो मण्डपो योऽसौ कर्मकर्त्तुः शुभावहः।। इति।। २९।।

ज्योत्स्ना-अध्याय के अन्त में याग करने हेतु उत्सुक यजमान द्वारा विधिवत् मण्डप-स्थापन करने के पश्चात् उसके लिए अपनी शुभकामना व्यक्त करते हुए विट्ठल दीक्षित कहते हैं कि ऊपर की ओर उठे हुए पत्तों एवं फल के कारण अत्यन्त झुके हुए शोभायमान कदलीवृक्षों से आलिङ्गित स्तम्भ वाला; चारो ओर से अनेक गुच्छों वाले आम्रपल्लवों के वन्दनवारों से घिरा हुआ; बंधे हुए शोभायमान चँवरों, शीशों रंग-विरंगे वस्त्रों से घिरा हुआ तथा पुष्पों एवं फलों से समन्वित महामण्डप आपलोगों के लिए शुभ फल देने वाला हो।

आशय यह है कि भीतर-बाहर से पूर्णतः सुसज्जित मण्डप सर्वविध कल्याणकारी होता है। मण्डपों के सजावट के सन्दर्भ में सिद्धान्तशेखर में इस प्रकार कहा गया है-

चूतपल्लवमालादिवितानैरुपशोभितम् ।
विचित्रवस्त्रसञ्छन्नं पट्टकूलविभूषितम्।।
सफलैः कदलीस्तम्भैः क्रमुकैर्नारिकेलजैः।
फलैर्नानाविधैर्भोज्यैर्दर्पणैश्चामरैरपि ।
भूषितं मण्डपं कुर्याद्रत्नपुष्पसमुज्ज्वलम्।।

कुण्डमार्तण्ड में भी इसकी विवेचना की गई है, जो इस प्रकार है-

फलालिरञ्जितच्छदोल्लसत्कदल्यधिष्ठितं
प्रसूनगुच्छसंयुतं विधेहि मण्डपश्रियम्।
सुवर्णमौक्तिकोज्ज्वलद्वितानरञ्जितान्तरं
प्रबद्धदर्पणस्फुरन्मनोज्ञपञ्चचामरम् ।। २७।।

इस प्रकार श्रीमद्विट्ठलदीक्षितविरचित मण्डपकुण्डसिद्धि के मण्डप-सिद्धिनामक प्रथम अध्याय की श्रीनिवास शर्माकृत सान्वय 'ज्योत्स्ना' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

पूर्व
तोरणद्वार
ग्रहवेदी
रुद्रकलश
योगिनी वेदी
वसोर्धारा
षोडशमातृका
वरुणकलश
उत्तर
हवनकुण्ड
प्रधानवेदी
सर्वतो
लिंगतो वा
शय्याधिवास
दक्षिण
क्षेत्रपालवेदी
वास्तुकलश
अन्नाधिवास
वास्तुवेदी
पश्चिम

म. कु. ४
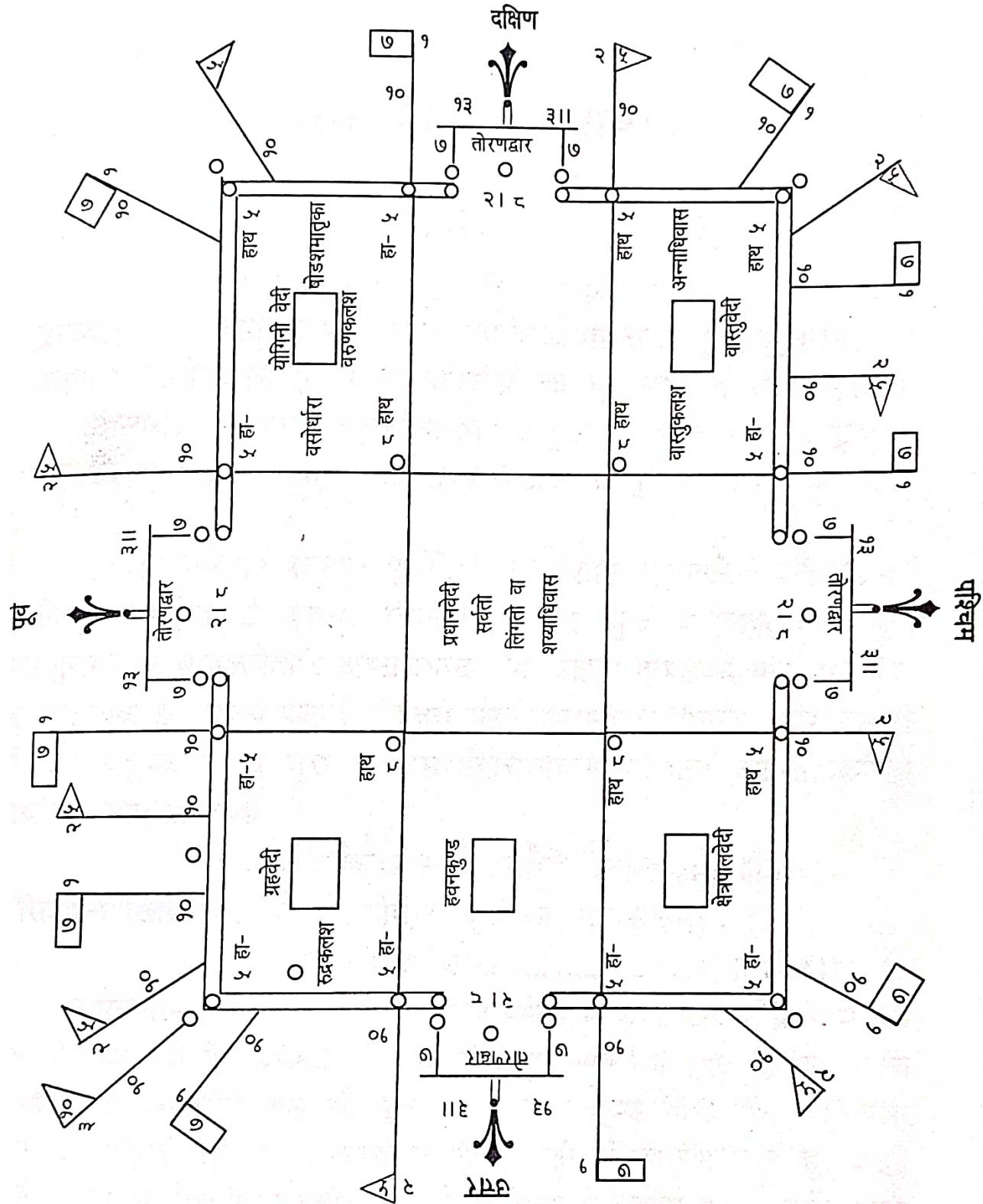
अथ द्वितीयोऽध्यायः

(कुण्डसिद्धिप्रकरणम्)

तत्र नवकुण्डनिवेशनं विपरीताख्यानक्याह-

प्राच्याः चतुष्कोणभगेन्दुखण्डत्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि।
अष्टास्रि शक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदास्रि वा वृत्तमुशन्ति कुण्डम्।।१।।

अन्वयः- प्राच्याः चतुष्कोण-भग-इन्दुखण्ड-त्रिकोण-वृत्त-अङ्गभुज-अम्बुजानि अष्टास्रि तु शक्रेश्वरयोः मध्ये वेदास्रि वा वृत्तं कुण्डम् (आचार्याः) उशन्ति।।१।।

(बलदाभाष्यम्) **प्राच्याः पूर्वदिशः सकाशात् चतुष्कोणं प्रसिद्धं भगं योनिकुण्डमिन्दुखण्डं वृत्तार्धं त्रिकोणं प्रसिद्धं वृत्तं वर्त्तुलकुण्डमङ्गभुजं षड्भुजमम्बुजं कमलमेतानि अष्टास्र्यष्टकोणञ्चैतानि कुण्डान्याचार्या उशन्ति। तु पुनः शक्र इन्द्रस्तस्य पूर्वा दिगीश्वरो महादेवस्तस्येशानदिगनयोर्मध्येऽन्तराले वेदास्रि चतुष्कोणं वा वृत्तं कुण्डमर्थादाचार्यकुण्डमाचार्या उशन्तीच्छन्ति। तथोक्तं शारदातिलके-**

आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद्गौरीपतिमहेन्द्रयोः।। **इति।**

सिद्धान्तशेखरेऽपि- पुरन्दरेशयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरस्रकम्।
तदाचार्यविनिर्दिष्टम्........................। **इति।।१।।**

ज्योत्स्ना- प्रथम अध्याय में प्रतिपादित मण्डप में कुण्डरचना के प्रसंग में तीन पक्ष उपस्थित होते हैं- प्रथमतः नव कुण्डों वाला नवकुण्डी पक्ष; द्वितीयतः पाँच कुण्डों वाला पञ्चकुण्डी पक्ष और तृतीयतः एकमात्र कुण्ड वाला एककुण्डी पक्ष। उनमें से नवकुण्डी पक्ष के नव कुण्डों के निवेशन की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के मध्यस्थित प्रधान वेदी के पूर्व आग में चतुरस्र कुण्ड, अग्नि कोण में योनि कुण्ड, दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड, नैर्ऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड, पश्चिम में वृत्त कुण्ड, वायव्य कोण में षडस्र (षट्कोण) कुण्ड, उत्तर में पद्म कुण्ड, ईशान कोण में अष्टकोण कुण्ड एवं ईशान तथा पूर्वस्थित अष्टकोण तथा चतुरस्र कुण्ड के मध्य में चतुष्कोण अथवा गोलाकार आचार्यकुण्ड की स्थापना करनी चाहिए। आचार्य

कुण्ड के सम्बन्ध में शारदातिलक में इस प्रकार कहा गया है-

आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः।। १।।

नवकुण्डीचक्रम्

अष्टकोण (८) वृत्त (९) चतुरस्र (१)		योनि (२)
पद्म (७)	प्रधानवेदी	अर्धचन्द्र (३)
षडस्र (६)	वृत्त (५)	त्रिकोण (४)

पञ्चकुण्डैककुण्डयोर्निवेशनमिन्द्रवज्रयाह-

आशेशकुण्डैरिह पञ्चकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोमशैवे।
वेद्याः सपादेन करेण यद्वा पादान्तरेणाखिलकुण्डसंस्था।। २।।

अन्वयः- इह आशेशकुण्डैः पञ्चकुण्डी स्यात्। च यदा एकं (कुण्डं) तदा पश्चिमसोमशैवे स्यात्। अखिलकुण्डसंस्था वेद्याः सपादेन करेण यद्वा पादान्तरेण स्यात्।। २।।

(बलदाभाष्यम्) **आशा दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरास्तथेश ईशान-कोणः तेषु यानि चतुरस्रार्धचन्द्रवृत्ताम्बुजाष्टास्रकाणि कुण्डानि तैरिहात्र पञ्चकुण्डी स्यात्। तथोक्तं नारदीये–**

यत्रोपदिश्यते कुण्डं चतुष्कं तत्र कर्मणि।
वेदास्रमर्धचन्द्रं च वृत्तं पद्मनिमं तथा।।
कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।
पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशदिग्गोचरं द्विजः।।

चात्पुनर्यदैकमेव कुण्डं चिकीर्षितं स्यात्तदा पश्चिमसोमशैवेऽर्थात् पश्चिमे चेद्वृत्तमुत्तरे पद्मनिभमीशाने चेदष्टास्रं कार्यम्। वेद्या मध्यवेद्याः सकाशात्सपादेन करेण सपादहस्तेनान्तरेण यद्वा पादान्तरेण मध्यवेद्या यो विस्तारस्तस्य पादश्चतुर्थांशस्तदन्तरेणाखिलानां सर्वेषां कुण्डानां संस्था स्थितिः स्यात्। तथोक्तं विशिष्ठसंहितायाम्–

वेदीपादान्तरं हित्वा नव कुण्डानि पञ्च चेति।

नारदीये- कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसम्मितम्।। २।।

ज्योत्स्ना- नवकुण्डी-स्थापन का प्रकार बतलाने के बाद अब पञ्चकुण्डी एवं एककुण्डी पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पञ्चकुण्डी पक्ष में दिक्कुण्ड और ईशान कुण्ड अर्थात् पूर्व दिशा में चतुरस्र कुण्ड, दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड, पश्चिम में वृत्तकुण्ड, उत्तर में पद्मकुण्ड और ईशान कोण में वृत्त अथवा चतुरस्र आचार्य कुण्ड की स्थापना करनी चाहिए। किसी-किसी के मतानुसार ईशान कोण अष्टकोण-कुण्डस्थानीय होता है, अतः वहाँ पर अष्टास्र कुण्ड की स्थापना करनी चाहिए।

पञ्चकुण्डीचक्रम्

वृत्त/चतुरस/ अष्टास्र	चतुरस्र	
पद्म	प्रधानवेदी वृत्त	अर्धचन्द्र

एककुण्डी पक्ष का प्रतिपादन करते हुए हैं कि यदि एक ही कुण्ड बनाना अभीष्ट हो तो उसकी स्थापना पश्चिम, उत्तर अथवा ईशान कोण में करनी चाहिए। समस्त कुण्डों की स्थापना मध्यस्थित प्रधान वेदी से सवा हाथ अर्थात् तीस अंगुल की दूरी पर करनी चाहिए अथवा वेदी के माप का चौथाई भाग जितनी दूरी पर करनी चाहिए। समस्त कुण्डों का नाभिसूत्र एक ही रखना चाहिए। मण्डप यदि मध्यम मान का हो तो तेरह अंगुल का अन्तर देकर कुण्डों की स्थापना करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में विभिन्न शास्त्रों के वचन इस प्रकार हैं-

वेदीपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नव पञ्च च। (वसिष्ठसंहिता)
कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसम्मितम्। (नारदीय)
त्यक्त्वा वेदीं चतुर्भागाम्। (सिद्धान्तशेखर)
त्रयोदशांगुलं त्यक्त्वा वेदिकायाश्चतुर्दिशम्। (वासिष्ठ)।।२।।

एककुण्डीपक्षे विशेषमाह शलिन्या-

विप्राच्छ्रुत्यस्रं च वृत्तं च वृत्तार्धं त्र्यस्रि स्याद्वेदकोणानि वापि।
सर्वाण्याहुर्वृत्तरूपाणि चान्ये योन्याकाराण्यङ्गनानान्तु तानि।।३।।

अन्वयः- विप्रात् श्रुत्यस्रं च वृत्तं च वृत्तार्ध त्यस्रि (कुण्डं) स्यात्। अपि वा वेदकोणानि (स्युः)। च अन्ये सर्वाणि वृत्तरूपाणि आहुः। तु तानि अङ्गनानां योन्याकाराणि (कुण्डानि स्युः)।। ३।।

(बलदाभाष्यम्) विप्राद् ब्राह्मणादेरेककुण्डीपक्षे श्रुत्यस्रं चतुर्भुजं च पुनः वृत्तं वर्तुलं च पुनः वृत्तार्धमर्धचन्द्रं त्र्यस्रि त्रिकोणं स्यादपि वा पक्षान्तरे सर्वाणि ब्राह्मणाद्युक्तकुण्डानि चतुरस्राण्याहुरन्ये च वृत्तरूपाण्याहुः। तथोक्तं शारदायाम्–

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम्।
चतुरस्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः।

पञ्चरत्ने– सर्वाणि तानि वृत्तानि चतुरस्राणि वा सदा। **इति।**

तु पुनरङ्गानां ब्राह्मणाद्यङ्गनानां यज्ञकर्तॄणां यागे तानि वर्णविभागोक्तानि कुण्डानि योन्याकाराण्यर्थाद्योनिकुण्डान्येवाहुः। तथाह सनत्कुमारः–

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्। **इति।**

अत्र दिशस्तु प्रागुक्ता एव योनिनिवेशनन्तु दिक्प्राधान्येनेति।। ३।।

ज्योत्स्ना– कुण्डस्थापन में प्रधान पक्ष का विवेचन करने के उपरान्त ग्रन्थान्तर-सम्मत पक्षों का निरूपण करते हुए कहते हैं कि नव, पाँच अथवा एक कुण्ड ब्राह्मण के लिए बनाना हो तो चतुरस्र, क्षत्रिय के लिए वृत्त, वैश्य के लिए अर्धचन्द्र और शूद्र के लिए त्रिकोण कुण्ड स्थापित करना चाहिए अथवा समस्त वर्णों के लिए चतुरस्र या वृत्त कुण्ड की स्थापना करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में शारदातिलक में इस प्रकार कहा गया है–

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम्।।
चतुरस्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिका।।

कर्ता यदि स्त्री हो तो समस्त कुण्ड योनि के आकार के ही स्थापित करने चाहिए। इस विषय में सनत्कुमार कहते भी हैं कि–

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्।।

चारो वर्णो एवं स्त्री कर्ता को यदि एक कुण्ड- स्थापन ही अभीष्ट हो तो पश्चिम, उत्तर अथवा ईशान कोण में उसकी स्थापना करनी चाहिए। यज्ञ यदि हवन प्रधान हो तो मध्य में एक कुण्ड और पूर्व में प्रधान वेदी स्थापित करनी चाहिए। यदि रुद्रयज्ञ हो तो मध्य में एक कुण्ड, ईशान कोण में प्रधान वेदी और उसके दक्षिण में ग्रहवेदी की स्थापना करनी चाहिए।। ३।।

कुण्डफलमाह-

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिर्मृतिच्छिदे।
वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके ।।४।।

अन्वयः- प्राच्यादिकुण्डके हि सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिः मृतिच्छिदे वृष्टिः आरोग्यं फलम् उक्तम्।। ४।।

(बलदाभाष्यम्) **प्राच्यादिषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु यत्कुण्डं तत्र पूर्वकुण्डे चतुरस्रे सिद्धिरग्निकोणे योनिकुण्डे पुत्राः पुत्राप्तयोर्दक्षिणेऽर्धचन्द्रे शुभं निर्ऋतौ त्र्यस्रकुण्डे शत्रुनाशः पश्चिमे वर्त्तुले शान्तिर्वायौ षडस्रे मृतिच्छिदे मारणछेदन उत्तरे पद्मकुण्डे वृष्टिरीशानेऽष्टास्रिकुण्डेऽऽरोग्यमेतत्फलमुक्त-माचार्यैरिति। एतेन स्वस्वाभीष्टकार्यसिद्धये यथोक्तकुण्डं रचयेदिति फलितार्थः। तथोक्तं शारदायाम्–**

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्रमुदाहृतम्।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्धेन्द्वाभं शुभप्रदम्।।
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्त्तुलं शान्तिकर्मणि।
छेदमारणयोः षष्ठं षडस्रं पद्मसन्निभम्।
वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम्।। ४।।

ज्योत्स्ना- कुण्डों का स्थापनक्रम प्रदर्शित कर अब पूर्वादि सभी नव कुण्डों का फल प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि किसी देवता या कार्य की सिद्धि के लिए चतुरस्र कुण्ड, पुत्रप्राप्ति के लिए योनिकुण्ड, कल्याण के लिए अर्धचन्द्र कुण्ड, शत्रुनाश के लिए त्रिकोण कुण्ड, शान्ति के लिए वृत्तकुण्ड, मारण-छेदन के लिए षट्कोण कुण्ड, वृष्टि के लिए पद्मकुण्ड और आरोग्यप्राप्ति के लिए अष्टकोण कुण्ड की स्थापना करनी चाहिए। कुण्डों के फल का विवेचन करते हुए शारदातिलक में इस प्रकार कहा गया है-

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्रमुदाहृतम्।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्धेन्द्वाभं शुभप्रदम्।।
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि।
छेदमारणयोः षष्ठं षडस्रं पद्मसन्निभम्।
वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम्।।

कुण्डमार्तण्ड में आचार्यकुण्ड का फल-प्रतिपादन करते हुए इस प्रकार कहा गया है -

प्राचीशम्भुदिगन्तजे जयधने वृत्तेऽब्धिकोणेऽपि वा।

कुण्डमार्तण्ड में ही पञ्चास्र एवं सप्तास्र कुण्डों का फल इस प्रकार बताया गया है-

त्वभिचारकर्मशमनं पूर्वज्ञविद्वत्स्मृतम्।
स्याद्भूतदोषशमनं समसप्तकोणम्।। ४।।

हवनसंख्यया कुण्डमानं शिखरिण्याह-

शतार्धे रत्निः स्याच्छतपरिमितेऽरत्निविततं
सहस्रे हस्तं स्यादयुतहवने हस्तयुगले।
चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षट्करमितं
ककुब्भिर्वा कोटौ नृपकरमिति प्राहुरपरे।। ५।।

अन्वयः- शतार्धे रत्निः शतपरिमिते अरत्निविततं, सहस्रे हस्तं, अयुतहवने हस्तयुगलं, लक्षे चतुर्हस्तं, प्रयुतहवने षट्करमितं (कुण्डं) स्यात्। कोटौ ककुब्भिः, अपरे (कोटिहोमे) नृपकरम् अपि (कुण्डं) प्राहुः।। ५।।

(बलदाभाष्यम्) **शतार्धे पञ्चाशन्मितहवने रत्निरेकविंशत्यंगुलमितम्। शतपरिमिते शतसंख्याकहवनेऽरत्निः सार्द्धद्वाविंशत्यंगुलस्तेन विततं विस्तृतं तत्तुल्यमिति यावत्। सहस्रे सहस्राहुतौ हस्तमेकहस्तमितम् अयुतहवने दशसहस्राहुतौ हस्तयुगलं द्विहस्तमितम्। लक्षे लक्षाहुतौ चतुर्हस्तं चतुर्हस्तमितम्। प्रयुतहवने दशलक्षाहुतौ षट्करमितं कुण्डं प्राहुः। कोटौ शतलक्षाहुतौ ककुब्भिरष्टभिर्हस्तैः सममपरे नृपकरं षोड़शहस्तमपि कुण्डं प्राहुः। तथोक्तं भविष्ये–**

मुष्टिमानं शतार्धे तु शते चारत्निमात्रकम्।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात्करात्मकम्।।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम्।
दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षते।
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्।। इति।

ननूक्तसंख्यया न्यूनाधिके हवने किम्मानं कुण्डमित्याशङ्कापरिहारायोच्यते। भविष्योक्तवचनबलादित्थमवगम्यते यत्पञ्चाशता न्यूने न कुण्डं पञ्चाशदाहुतिमारभ्यैकोनशतं यावदाहुतौ। रत्निमितमेवं शतमारभ्यैकोनसहस्रं यावदरत्निमितमेवं सहस्रमारभ्यैकोनायुतं यावदेकहस्तमितमेवमयुत-

मारभ्यैकोनलक्षं यावद्धस्तद्वयमेवमग्रेऽप्ययमेवं सिद्धान्त इति। यत्तु कैश्चित्-

अन्तरं नवभिर्भक्तं यत्पूर्वापरकुण्डयोः।
अंगुलानि यदाप्तं तु सा वृद्धिरिष्टहोमकः॥

इत्यनेन वृद्धिरुक्ता सा न समीचीना यतोऽष्टसहस्रहवने कर्त्तव्ये सहस्र-हवनोक्तपूर्वकुण्डमानम् २४ अंगुलानि दशसहस्रापरकुण्डमानम् ३४ अंगुलानि अनयोरन्तरं १० नवभक्तं लब्धमंगुलं १ एतावदेवैकरूपा वृद्धिः सहस्रमा-रभ्यादशसहस्रपर्यन्तं स्यादिति महदसङ्गतमिति बुद्धिमद्भिर्विचिन्त्यमिति॥५॥

ज्योत्स्ना- आहुति की संख्या के अनुसार कुण्ड का मान स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पचास से लेकर सौ से कम अर्थात् निन्यानवे तक की आहुति के लिए इक्कीस अंगुल के रत्निमात्र परिमाण का कुण्ड स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार एक सौ से लेकर एक न्यून सहस्र आहुति के लिए बाइस अंगुल, चार यव का अरत्नि परिमाण वाला; एक हजार से एक कम दस हजार तक की आहुति के लिए एक हाथ का; दस हजार से लेकर एक कम एक लाख तक की आहुति के लिए दो हाथ का; एक लाख से लेकर एक कम दस लाख तक की आहुति के लिए चार हाथ का; दस लाख से लेकर एक कम एक करोड़ तक की आहुति के लिए छः हाथ का तथा एक करोड़ अथवा उससे भी अधिक आहुति के लिए आठ हाथ या कतिपय विद्वानों के मत से सोलह हाथ का कुण्ड स्थापित करना चाहिए। शारदातिलक में कहा भी गया है-

मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्धे सम्प्रचक्षते।
शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्रके॥
द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदीरितम्।
दशलक्षे तु षड्ढस्तं कोट्यामष्टकरं स्मृतम्॥

इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के वचन भी द्रष्टव्य हैं, जैसे-

मुष्टिमानं शतार्धे तु शते चारत्निमात्रकम्।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात्करात्मकम्॥
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम्।
दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षते॥
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्। (भविष्यपुराण)
कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं समन्ततः।
योनिवक्त्रद्वयोपेते तदप्याहुस्त्रिमेखलम्॥ (स्कन्दपुराण)

ध्यातव्य है कि पचास से कम आहुतियों के लिए कुण्ड का विधान नहीं किया

गया है। इसीलिए यज्ञोपवीत, विवाहादि संस्कारों में प्रादेश, वितस्ति या अष्टादशांगुलात्मक स्थण्डिल पर ही हवन कार्य सम्पन्न कर लिया जाता है।। ५।।

प्रकारान्तरेण कुण्डमानमुपजातिकयाह–

लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षकान्तं करैकवृद्ध्यादशहस्तकं च।
कोट्यर्धदिग्विंशतिलक्षलक्षदले मुनीष्वर्त्तुकृशानुभिश्च।।६।।

अन्वयः– लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षकान्तं करैकवृद्ध्या दशहस्तकं कोट्यर्ध-दिग्विंशतिलक्षलक्षदले मुनिष्वर्तुकृशानुहस्तं च (कुण्डं स्यात्)।।६।।

(बलदाभाष्यम्) **लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षकानामन्तं मर्यादीकृत्यादश-लक्षकान्तमर्थादेकलक्षमारभ्य लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षपर्यन्तमित्यर्थः। एवमेव करैकमारभ्यैकैककरवृद्ध्या दशहस्तकं दशहस्तपर्यन्तं यथा लक्षाहुतावेकहस्तं लक्षद्वयाहुतौ द्विहस्तं लक्षत्रयाहुतौ त्रिहस्तमित्थमग्रेऽपि ज्ञेयम्। च पुनः कोटेरर्धे पञ्चाशल्लक्षे दिग्दशलक्षे विंशतिलक्षे लक्षदलेऽर्थात्पञ्चाश-त्सहस्राहुतौ क्रमेण मुनयः सप्त ७ इषवः पञ्च ५ षड् ऋतवः ६ कृशा नवस्त्रयः ३ एतैश्चकाराद्धस्तैः समं कुण्डं प्राहुरिति पूर्वश्लोकतोऽध्याहारः। इयदेव परिमाणं कुण्डस्याप्तैर्ग्रन्थकर्तृभिः स्वीकृतम्। तथोक्तं शारदायाम्–**

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।
लक्षाणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्धयेत्।

सिद्धान्तशेखरे– लक्षार्धे त्रिकरं कुण्डं लक्षहोमे चतुष्करम्।
कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षाहुतौ क्रमात्।
षड्ढस्तं लक्षविंशत्यां कोट्यर्धे हस्तसप्तकम्।। इति।

अथात्र सूक्ष्मद्रव्यहवने लक्षैकवृद्ध्येति पक्षः स्थूलद्रव्यहवने शतार्धे रत्निरिति पक्षो ग्राह्य इत्यस्माकं मतमिति।।६।।

ज्योत्स्ना– प्रकृत श्लोक द्वारा सूक्ष्म द्रव्यों की आहुति के अनुरूप से कुण्ड के विस्तार का निरूपण करते हुए कहते हैं कि एक लाख की आहुति हेतु एक हाथ का कुण्ड स्थापित करे और तत्पश्चात् प्रति लाख के लिए एक-एक हाथ की वृद्धि करते हुए दस लाख की आहुति के लिए दस हाथ का कुण्ड स्थापित करे। इसी का प्रतिपादन करते हुए शारदातिलक में कहा भी गया है–

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।
लक्षाणां शतकं यावत्तावद्धस्तेन वर्धयेत्।।

कतिपय आचार्यों का यह भी मत है कि पचास लाख की आहुति के लिए सात हाथ का, बीस लाख हेतु छः हाथ का, दस लाख हेतु पाँच हाथ का एवं पचास हजार की आहुति हेतु तीन हाथ का कुण्ड स्थापित करना चाहिए। सिद्धान्तशेखर में इसका निरूपण करते हुए इस प्रकार कहा भी गया है-

लक्षार्धे त्रिकरं कुण्डं लक्षहोमे चतुष्करम्।
कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षाहुतौ क्रमात्।
षड्ढस्तं लक्षविंशत्यां कोट्यर्धे हस्तसप्तकम्।। ६।।

एकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डानामंगुलात्मकं
मानं शार्दूलविक्रीडितवृत्तेनाह-

वेदाक्षीणि युगाग्नयः शशियुगान्यष्टाब्धयस्त्रीषवो-
ऽष्टाक्षावह्निरसारसांगकमिता नेत्रर्षयोऽक्षस्वराः।
अंगुल्योऽथ यवाः खमभ्रमिषवः खं पञ्च षट् सागराः
सप्ताभ्रं मुनयस्त्वमी निगदिता वेदास्रके बाहवः।।७।।

अन्वयः- वेदाक्षीणि युगाग्नयः शशियुगानि अष्टाब्धयः त्रीषवः अष्टाक्षाः वह्निरसाः रसाङ्कमिताः नेत्रर्षयः अक्षस्वराः अंगुल्यः। अथ तु खम् अभ्रम् इषवः खं पञ्च षट् सागराः सप्त अभ्रं मुनयः यवाः। अमी वेदास्रके बाहवः निगदिताः।। ७।।

(बलदाभाष्यम्) **अङ्कानां वामतो गतिरितिन्यायात् वेदाश्चत्वारोऽक्षिणी द्वावेवं चतुर्विंशतिः २४ युगाश्चत्वारोऽग्नयस्त्रय एवं चतुस्त्रिंशत् ३४ शशिरेको युगानि चत्वार एवमेकचत्वारिंशत् ४१ अष्टौ प्रसिद्धाः अब्धयश्चत्वार एवमष्टचत्वारिंशत् ४८ अष्टौ प्रसिद्धा अक्षाः पञ्चैवमष्टपञ्चाशत् ५८ वह्नयस्त्रयो रसाः षडेवं त्रिषष्टिः ६३ रसाः षडङ्कानि च षडेवं षट्षष्टिः ६९ नेत्रं द्वयं ऋषयः सप्तैवं द्विसप्ततिः ७२ अक्षाः पञ्च स्वराः सप्तैवं पञ्चसप्ततिः ७५ एता अंगुल्यः। अथ तु खं शून्यं ० अभ्रं शून्यं ० इषवः पञ्च ५ षट् ६ सागराश्चत्वारः ४ सप्त ७ अभ्रं ० मुनयः सप्त ७ एते यवाश्चैकादिहस्तकुण्डेषु क्षेत्रपदवाच्या बाहवो भुजा निगदिताः कथिता इत्यर्थः। ननु हस्तस्य चतुर्विंशत्यंगुलात्मकत्वात् द्व्यादिगुणितं चतुर्विंशत्यंगुलं कथन्नांगुलात्मकं द्व्यादिहस्तमानम्भवेदित्याशङ्काम्परिहरन्नाह। एकहस्तजं फलं द्व्यादिगुणितं सत् द्व्यादिहस्तजं फलं भवति यथैकहस्तकुण्डे**

फलं ५७६ वर्गांगुलं तद्द्विगुणितं द्विहस्तजं ११५२ त्रिगुणितं त्रिहस्तजं १७२८ एवमग्रेऽपि। एतेषाम्मूलानि क्रमेणैकादिहस्तमानमंगुलात्मकं यथैक-हस्तमानम् = $\sqrt{५७६}$=२४। द्विहस्तमानम्= $\sqrt{११५२}$=३४। त्रिहस्तमानम् = $\sqrt{१७२८}$=४१।५ एवमग्रेऽपि। तथोक्तं वास्तवकुण्डसिद्धौ–

तत्रैकहस्तजक्षेत्रफलं जिनकृतेः समम्।
द्वित्र्यादिगुणितं तद्धि द्व्यादिहस्तोद्भवं सदा।।
फलमेकभवं द्व्यादिगुणितं द्व्यादिहस्तजम्।
न हि द्व्यादिकराणां चांगुलवर्गसमं हि तत्।।७।।

स्थूलभुजमानचक्रम्

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	हस्त
२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	अंगुल
०	०	५	०	५	६	४	७	०	७	यव
५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०	क्षेत्रफल

सूक्ष्मभुजमानचक्रम्

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	१६	हाथ
२४	३३	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	९६	अंगुल
०	७	४	०	५	६	३	७	०	७	०	यव
०	४	४	०	२	२	७	०	०	१	०	यूका
०	४	३	०	४	३	७	३	०	२	०	लिक्षा
०	३	४	०	६	२	२	५	०	०	०	बालाग्र
०	५	५	०	४	६	०	६	०	४	०	रथ
०	४	०	०	०	०	१	०	०	०	०	त्र्यस्र

ज्योत्स्ना- एक हाथ से प्रारम्भ कर दस हाथ तक के कुण्ड का प्रचलित भुजमान स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि एक हाथ वाले कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई चौबीस अंगुल होती है। इसी प्रकार दो हाथ वाले कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई चौंतीस अंगुल, तीन हाथ वाले कुण्ड की इकतालीस अंगुल और पाँच यव, चार हाथ वाले कुण्ड की अड़तालीस अंगुल, पाँच हाथ वाले कुण्ड की तिरपन अंगुल एवं पाँच यव, छः हाथ वाले कुण्ड की अट्ठावन अंगुल एवं छः यव, सात हाथ वाले की तिरसठ अंगुल एवं चार यव, आठ हाथ वाले की छाछठ अंगुल एवं सात यव, नौ हाथ वाले की बहत्तर अंगुल और दस हाथ वाले कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई पचहत्तर अंगुल एवं सात यव होती है।

यहाँ यह शंका होती है कि एक हाथ का भुजमान जब चौबीस अंगुल है तो दो हाथ का चौतीस अंगुल कैसे होगा? इसका समाधान यह है कि एक हाथ के कुण्ड में चौबीस अंगुल की भुजा मानी गई है; अतएव दोनों को परस्पर गुणा करने से २४ X २४ = ५७६ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसको दो से गुणा करने से दो हाथ का क्षेत्रफल ५७६ X २ =११५२ प्राप्त होता है, जिसका वर्गमूल बनाने पर दो हाथ का भुजमान चौंतीस अंगुल निष्पन्न होता है।

अब एक हाथ से दस हाथ तक के चतुरस्र कुण्ड के भुज का क्षेत्रफल स्पष्ट करते हैं। एक हाथ के भुज का क्षेत्रफल उपर्युक्त रीति के अनुसार ५७६, दो हाथ का ५७६ X २ = ११५२, तीन हाथ का ५७६ X ३ =१७२८, चार हाथ का ५७६ X ४ = २३०४, पाँच हाथ का ५७६ X ५ = २८८०, छः हाथ का ५७६ X ६= ३४५६, सात हाथ का ५७६X ७ = ४०३२, आठ हाथ का ५७६ X ८ = ४६०८, नौ हाथ का ५७६ X ९ = ५१८४ और दस हाथ का ५७६ X १० = ५७६० होता है।

कुण्डाङ्क के परिज्ञान एवं षडस्र, पञ्चास्र, सप्तास्र तथा अष्टकोण कुण्डों के निर्माण में सुकरता के लिए वृत्त के स्वरूप को जानना भी अनिवार्य है; अतः उसका स्वरूप निम्न चक्र में द्रष्टव्य है-

कुण्डों का क्षेत्रफल उपर्युक्त तालिका के अनुसार ही रखना चाहिए। कम या ज्यादा क्षेत्रफल रखने में दोष होता है, जैसा कि कहा भी गया है-

खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः।
वक्रकुण्डे च सन्तापो मरणं छिन्नमेखले।।
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः।
भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विनाकृते।।
कुण्डं यत्कण्ठरहितं सुतानां तन्मृतिप्रदम्।। ७।।
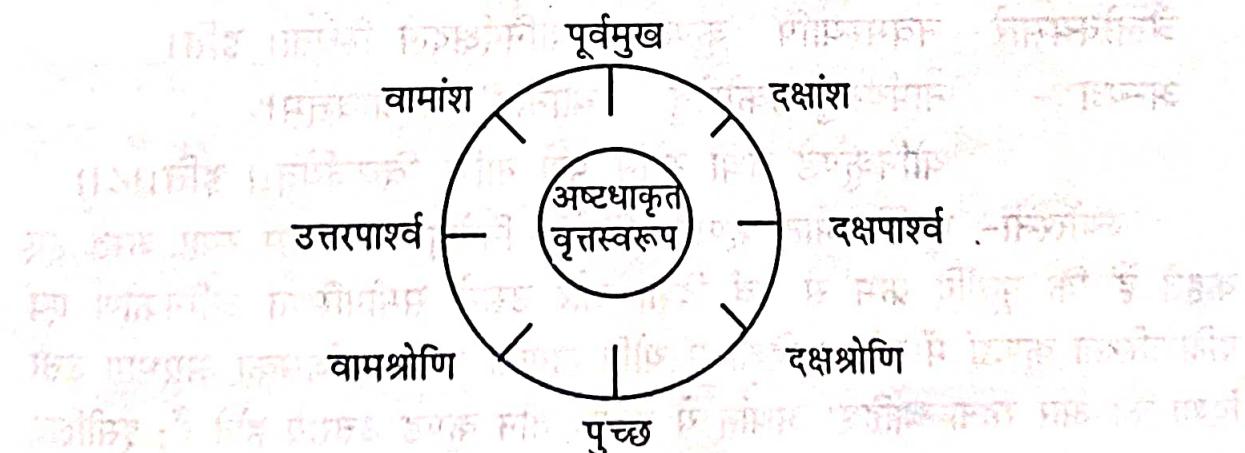
कुण्डेषु योनिनिवेशनमिन्द्रवज्रयाह-

कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिरैन्द्र्याः सौम्याग्रका स्यादितराणि पञ्च।
पश्चाद्भगानीन्द्रदिगग्रकाणि योनिर्न कोणे न च योनिकुण्डे।।८।।

अन्वयः- ऐन्द्र्याः सकाशात् कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिः सौम्याग्रका स्यात्। इतराणि पञ्च पश्चाद् भगानि इन्द्रदिगग्रकाणि (स्युः)। कोणे योनिः न (कार्या), योनिकुण्डे च (योनिः न कार्या)।। ८।।

(बलदाभाष्यम्) **ऐन्द्र्याः पूर्वदिशः सकाशात्कुण्डानां त्रयी दक्षिणे योनिर्यस्याः सा किं विशिष्टा सा सौम्य उत्तरस्यां अग्रकाण्यग्राणि यस्याः सार्थात्पूर्वाग्नियाम्यकुण्डेषु दक्षिणदिश्युत्तराग्रा योनिर्विधेयैतानि कुण्डान्यप्युत्तराग्राणीति ज्ञेयम्। तथा चेतराणि निर्ऋतिपश्चिमवायूत्तरेशनामानि यानि पञ्च कुण्डानि पश्चात्पश्चिमायां भगानि भगाकृतयो येषां तानि किम्विशिष्टानीन्द्रदिश्यग्राण्यग्रकाणि येषां तान्यर्थादुक्तकुण्डेषु पश्चिमदिशि पूर्वाग्रा योनिर्विधेया तानि कुण्डान्यपि पूर्वाग्राणीति ज्ञेयम्। तथा च कोणे कुण्डस्य कोणे योनिर्न कार्येति। तथोक्तं स्वायम्भुवे-**

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी।
पूर्वामुखाः स्थिताः शेषा यथाशोभं व्यवस्थिता।। **इति।**

त्रैलोक्यसारे- नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदले स्थिता। **इति।**

अन्यत्र - नार्पयेत्कुण्डकोणेषु योनितां तन्त्रवित्तम।
योनिकुण्डे तथा योनिं पद्मे नाभिं विवर्जयेत्।। **इति।।८।।**

ज्योत्स्ना- पूर्वादि आठ कुण्डों में योनि-निवेशन का क्रम स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पूर्वादि क्रम से पूर्व दिशा और उससे समीपस्थित अग्निकोण एवं दक्षिणस्थित कुण्डों में दक्षिण दिशा में योनि लगानी चाहिए, जिसका अग्रभाग उत्तर दिशा की ओर रहना चाहिए। अर्थात् ये पूर्वादि तीन कुण्ड उत्तराग्र होते हैं; इसीलिए

इन कुण्डों में उत्तरमुख होकर होता को हवन करना उचित है। शेष नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायव्य कोण, उत्तर और ईशान कोणस्थित पाँच कुण्डों की योनि पश्चिम दिशा में लगानी चाहिए, जिसका अग्रभाग पूर्व की ओर रहता है और इसीलिए इन्हें पूर्वाग्र कहा जाता है। इन कुण्डों में पूर्वमुख बैठकर होता हवन करता है। इसी क्रम को स्वायम्भुव में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी।
पूर्वामुखाः शेषाः शेषा यथाशोभं व्यवस्थिता।।

उपर्युक्त आठ कुण्डों के अतिरिक्त बनने वाले नवें आचार्यकुण्ड के विषय में यहाँ कोई निर्देश नहीं किया गया है, किन्तु **प्रकरणादर्थसङ्गतिः** के अनुसार पूर्व-कुण्ड में दक्षिण योनि एवं ईशान कुण्ड में पश्चिम योनि का विधान होने के कारण आचार्यकुण्ड में भी यही विधान दृष्टिगोचर होता है। आचार्यकुण्ड में यदि दक्षिणयोनि होगी तो होता उत्तरमुख होकर हवन करेंगे और पश्चिमयोनि होगी तो होता पूर्वमुख होकर हवन करेंगे, जैसा कि होत्रमुखवर्णन के प्रसंग में कुण्डरत्नाकर में कहा भी गया है–

प्रागाग्नेयो दक्षिणास्येषु कुण्डेष्वग्रं सौम्यां होमकर्त्तोत्तरास्यः।
प्रागाग्राणि स्युस्तथाग्न्यानि होता प्रागास्यः स्यात्प्राग्वदाचार्यकुण्डे।।

योनिनिवेशन का निषेध करते हुए कहते हैं कि योनि दल के मध्य में ही लगानी चाहिए, कोण में नहीं। साथ ही साथ योनिकुण्ड में भी योनि नहीं लगानी चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि योनिकुण्ड एवं त्रिकोण कुण्ड में योनि नहीं लगानी चाहिए, जैसा कि योनिनिवेशन प्रसंग में त्रैलोक्यसार में कहा भी गया है-

नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदले स्थिता।।
नार्पयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां तन्त्रवित्तमः।
योनिकुण्डे तथा योनिं पद्मे नाभिं विवर्जयेत्।।

आशा यह है कि योनिकुण्ड तो स्वयं ही योनिस्वरूप है, अतएव उसमें अलग से योनिनिवेशन की कोई आवश्यकता ही नहीं होती।। ८।।

सर्वकुण्डप्रकृतिभूतं चतुरस्रं शालिन्याह-

द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूत्रं शङ्कौ पश्चिमे पूर्वगेऽपि।
दत्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतुर्ये स्यादेवं वा वेदकोणं समानम्।।९।।

अन्वयः- सपाशं द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सूत्रं (कृत्वा) पश्चिमे पूर्वगे अपि शङ्कौ दत्वा पाशतुर्ये (धृत्वा) कोणयोः कर्षेत्। एवं वा समानं वेदकोणं स्यात्।। ९।।

(वलदाभाष्यम्) **द्विघ्नव्यासं द्विगुणितक्षेत्रसमं तुर्यं चतुर्थांशं चिह्नमङ्कं**

यस्मिन्तत् सपाशं पाशद्वययुक्तं सूत्रं डोरकं कृत्वेति शेषः। पश्चिमे पूर्वगेऽपिशब्दाद्वृत्तपालौ यच्छंकुद्वयं तत्र दत्वा पाशाभ्यां तुर्ये चतुर्विभागान्ते धृत्वेति शेषः। कोणयोरग्निनैर्ऋत्योरीशानवाय्वोर्वा कर्षेदेवं कृते समानं वेदकोणं चतुष्कोणं स्यात्। उक्तञ्च–

चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेष्वयं विधिः। इति।

विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्य आदशहस्तकुण्डनिर्माणाय चतुरस्रसारिण्यां व्यासादिकं लिखितमनया व्यासादिकमवगम्य कुण्डरचना सुखेन कार्येति।। ९।।

ज्योत्स्ना– कुण्डों के प्रकृतिभूत चतुरस्र कुण्ड का निरूपण करते हुए कहते हैं कि फँदे के सहित दुगुने व्यासप्रमाण; जैसे कि एक हाथ के व्यास को दुगुना करने

चतुरस्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गांगुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्ध	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
सूत्र	हा	२	२	३	४	४	४	५	५	६	६
	अं	८	२०	१२	०	१२	२२	७	१४	०	८

चतुरस्रकुण्डपूर्वस्वरूपम्
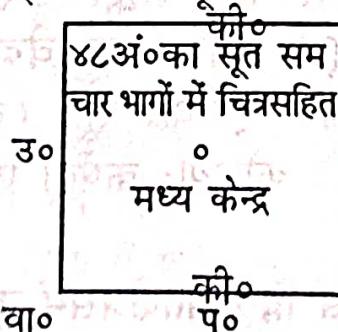
से दो हाथ परिमाण वाले सूत्र को लेकर उसमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवं मध्यबिन्दु पर चिह्न लगाकर कुण्ड के पूर्व एवं पश्चिम भाग में एक-एक कील गाड़ कर अडतालीस अंगुल के सूत्र में बारह अंगुल पर सूत्रपाश बनाकर उन्हें स्थापित कीलों में फँसा कर अग्नि एवं नैर्ऋत्य कोण की ओर सूत्र को खींचने पर सूत्र का फन्दा जहाँ आता हो वहाँ चिह्नित कर दे। पश्चात् वायव्य तथा ईशान कोण की ओर तरफ खींचने पर जहाँ फन्दा आता हो उन्हें भी चिह्नित कर दे। इस प्रकार समचतुरस्र कुण्ड सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार जितने व्यास का कुण्ड-निर्माण करना दो उसका दुगुना करके समचतुरस्र बना लेना चाहिए। समस्त कुण्डों को प्रथमतः चतुष्कोण बनाने के बाद ही उसके ऊपर योनि आदि अन्य कुण्डों की आकृति बनानी चाहिए। इस चतुरस्र कुण्ड को समस्त कुण्डों का प्रकृतिभूत कहा गया है-

चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेष्वयं विधिः।। ९।।

सिद्धचतुरस्रकुण्डस्वरूपम्
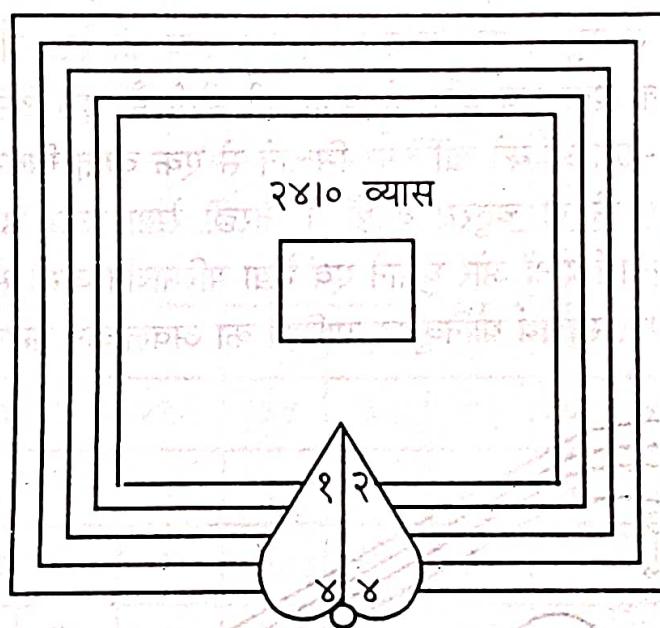
योनिकुण्डमिन्द्रवज्रयाह-

क्षेत्रे जिनांशे पुरतःशरांशान्सम्वर्ध्य च स्वीयरदांशयुक्तान्।
कर्णांघ्रिमानेन लिखेन्दुखण्डे प्रत्यक् पुरोऽङ्काद्गुणतोभगाभम्।।१०।।

अन्वयः- जिनांशे क्षेत्रे स्वीयरदांशयुक्तान् शरांशान् पुरतः संवर्ध्य च कर्णांघ्रिमानेन प्रत्यग् इन्दुखण्डे लिख। पुरः अङ्कात् गुणतः भगाभं (कुण्डं स्यात्)।।१०।।

(बलदाभाष्यम्) जिनाश्चतुर्विंशतिः विंशत्याद्याः सदैकत्व इत्यमरः।

अंशा भागा यस्य तस्मिन् चतुर्विंशतिधा विभक्त इत्यर्थः। क्षेत्रे कर्त्तव्यकुण्डस्य क्षेत्रे शरांशान् जिनांशानां पञ्चभागान् किम्विशिष्टान् स्वीयस्य पञ्चभागस्य ये रदांशास्तैर्युक्तान् पुरतोऽग्रतो योनिकुण्डस्योत्तराग्रत्वादुत्तरबिन्दुत इत्यर्थः; संवर्ध्य वर्धयित्वा च पुनः कर्णांघ्रिमानेन कर्णरेखायाश्चतुर्थांशमितेन सूत्रेण कर्काटकेन वा हे विद्वन् प्रत्यक् वर्धमानदिक्तः पश्चिमदिश्यर्थाद्विरुद्ध-दिशीन्दुखण्डे वृत्तार्द्धद्वयं लिख पुरोऽक्ताद्वर्धिताग्रचिह्नात्पूर्वापरसूत्रलग्न-वृत्तार्धं यावद्गुणतः सूत्रदानाद्भगाभं भगाकृतिकुण्डं स्यात्। विदुषामुप-कारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तयोनिकुण्डनिर्माणाय वर्धनादिकमानीय योनि-कुण्डसारिण्यां मया लिखितमनयेष्टयोनिकुण्डस्य वर्धनादिकं ज्ञात्वा तद्रचना कार्येति।।१०।।

ज्योत्स्ना- योनिकुण्ड के निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर उसके चार सम भाग करे, तत्पश्चात् प्रकृतिक्षेत्र के बत्तीस अंशयुक्त पाँच भाग को लेकर मध्य की रेखा में संयुक्त कर दे। यह वृद्धि पाँच अंगुल, एक यव और दो यूका की होती है। इस अग्रवर्धन की रेखा में मध्य पार्श्व की दो रेखाओं को खींचकर मिलाने से एक वृहत् त्रिकोण बन जायेगा। तत्पश्चात् ऊपरी भाग के दो चतुरस्र कोष्ठों में तिरछी रेखा देकर उसी के मध्य में परकाल रखकर दो वृत्तार्ध दोनों ओर घुमाने एवं रेखा परिमार्जन करने से योनि का शुद्ध स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा। स्पष्टार्थ योनिकुण्ड सारिणी का अवलोकन करना चाहिए।।१०।।
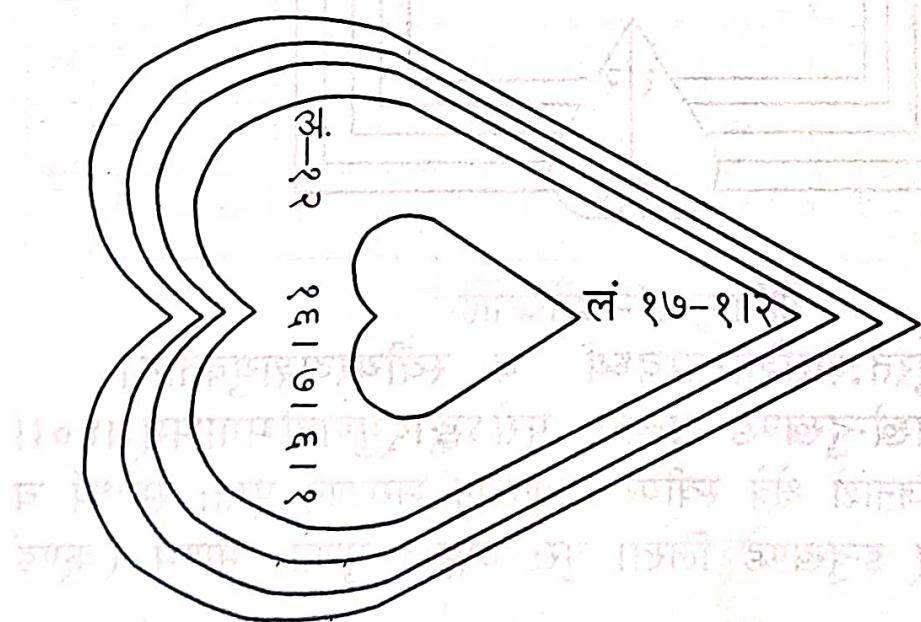
योनिकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
फल	वर्गांगुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४२	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	८	१२	१४	१७	१८	२०	२२	२३	२५	२६
	य	३	०	५	०	७	६	३	५	३	६
	यू	७	१	५	०	५	१	४	१	५	४
व्यास	अं	१६	२४	२९	३४	३७	४१	४४	४७	५०	५३
	य	७	०	३	०	७	४	७	२	७	५
	यू	६	२	३	०	३	२	१	२	२	१
वर्धन	अं	५	७	८	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	य	१	२	७	२	४	५	४	२	३	२
	यू	२	५	४	४	१	१	७	६	६	२
बृहद् अग्र	अं	१७	२४	२९	३४	३८	४१	४५	४७	५१	५४
	य	१	२	६	२	२	७	२	६	३	१
	यू	२	५	०	४	५	४	७	२	६	६
लघु अग्र	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
	यू	०	०	४	०	४	०	०	४	०	४

वसन्तमालिकयार्धचन्द्रमाह-

स्वशतांशयुतेषु भगहीनस्वधरित्रीमितकर्कटेन मध्यात्।
कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां विदधात्विन्दुदलस्य साधुसिद्ध्यै।।११।।

अन्वयः- मध्यात् स्वशतांशयुतेषु भागहीनस्वधरित्रीमितकर्कटेन कृतवृत्तदले

इन्दुदलस्य साधुसिद्ध्यै अग्रतः जीवां विदधातु।। ११।।

(बलदाभाष्यम्) **स्वस्य शतांशेन शतभागेन युतो य इषुभागः क्षेत्रस्य पञ्चमांशस्तेन हीनोना या स्वधरित्री क्षेत्रमितिस्तन्मितकर्कटेन व्यासार्धेन मध्यात्केन्द्रविन्दुतः। किं केन्द्रमित्यत आह चतुरस्रस्य प्रकृतिभूतत्वात्तन्मध्यगतायाः दक्षिणोत्तररेखायाः मध्यविन्दुवत उत्तरदिक्स्थमर्धार्धविन्दुरेव केन्द्रमतो दक्षिणदिशि कृतवृत्तदले रचितवृत्तार्धे साधु यथार्थमिन्दुदलस्यार्धचन्द्रस्य सिद्ध्यै अग्रतो वर्धनदिशि जीवां व्यासतुल्यां पूर्णज्यां विदधातु करोतु विद्वानिति शेषः। विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्ताध 'चन्द्रनिर्माणाय व्यासादिकमानीयार्धचन्द्रकुण्डसारिण्यां लिखितं मयानयेष्टकुण्डस्य व्यासादिकं ज्ञात्वा तद्रचना कार्येति।। ११।।**

ज्योत्स्ना- प्रकृत अर्धचन्द्रकुण्ड के निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः मध्य चिह्न से चौबीस अंगुलात्मक चतुरस्र बनाकर चतुरस्र के मध्य भाग में उन्नीस अंगुल, एक यव, एक यूका, पाँच लिक्षा एवं ७ बालाग्र परिमाण का परकाल अथवा इतने ही परिमाण के सूत्र से दो कीलों में फन्दा देकर कील से पूर्व- दक्षिण-पश्चिम तक अर्धचन्द्र का आकार बनाकर उत्तर की ओर पूर्व से पश्चिम तक जीवा संज्ञा वाली रेखा बना देने पर एक अत्यन्त सुन्दर अर्धचन्द्रकुण्ड बन जाता है। कतिपय विद्वान् अन्य विधि से भी अर्धचन्द्रकुण्ड बनाते हैं। इसमें ध्यातव्य यह है कि चाहे जिस विधि से भी अर्धचन्द्रकुण्ड का निर्माण किया जाय, आवश्यक यह है कि मध्यस्थित वेदी और कुण्ड की मेखला का अन्तर सभी कुण्डों में एक समान ही होना चाहिए।

अर्धचन्द्रकुण्डस्वरूपम्
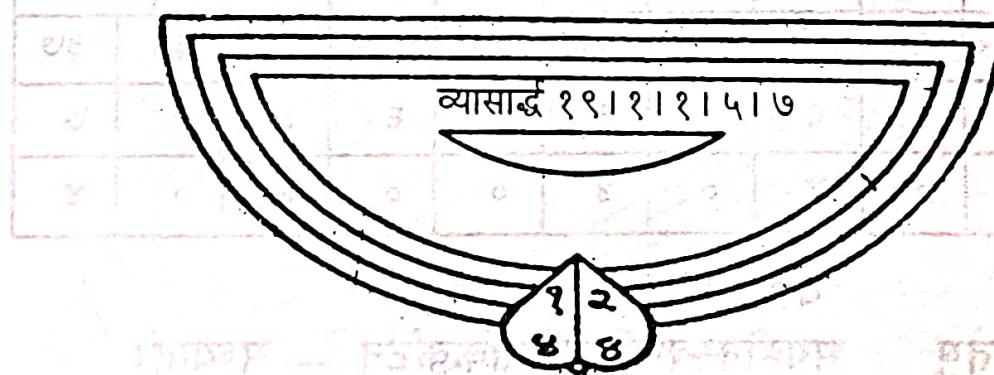
वैसे इसको बनाने की सरलतम विधि यह है कि मण्डप के दक्षिण-कोष्ठक का मध्य निकाल कर अथवा मध्यस्थित प्रधान वेदी से कनिष्ठ मण्डप में तेरह अंगुल

और उत्तम मण्डप में तीस अंगुल जगह कुण्ड बनाते समय ही सर्वत्र छोड़ दे। ऐसा करने से समस्त कुण्डों में कुण्ड और वेदी का समान अन्तर प्राप्त हो जाता है। प्रायः देखा जाता है कि अर्धचन्द्र, वृत्त एवं पद्मकुण्ड में कतिपय अन्तर आता है। इस अन्तर को दूर करने के लिए वेदी से मेखला तक अन्तर निकाल कर चिह्नित करके ही कुण्डसाधन करना उपयुक्त होता है।। ११।।

अर्धचन्द्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ०	वर्गांगुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१९	२७	३३	३८	४२	४६	५०	५३	५७	६०
	य	१	१	१	२	६	७	५	२	३	४
	यू	१	०	५	३	२	०	३	७	५	३
	ली	५	३	७	३	६	३	०	३	१	०
	वा	७	६	१	६	०	७	५	५	४	७
व्यास	अं	३८	५४	६६	७६	८५	९३	१०१	१०६	११४	१२१
	य	२	२	३	४	४	६	२	५	७	०
	यू	३	०	३	६	५	०	६	६	२	६
	ली	३	७	६	७	४	७	१	७	३	१
	वा	६	४	२	४	०	६	२	२	०	६

त्रिभुजं वृत्तञ्च शार्दूलविक्रीडितेनाह-

बह्न्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोण्योश्चतुर्थांशकम्
चिह्नेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्यस्रि कष्टोज्झितम्।
विश्वांशैः स्वजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्याद्वृत्तसंज्ञं शुभम्।। १२।।

अन्वयः- पुरतः वह्न्यंशं निधाय पुनश्च श्रोण्योः चतुर्थांशकं (निधाय) त्रिषु चिह्नेषु सूत्रदानतः इदं कष्टोज्झितं त्र्यस्रि (कुण्डं) स्यात्। जिनांशे कृते क्षेत्रे स्वजिनांशकेन सहितैः विश्वांशैः मितेन व्यासार्धेन (कृतम्) इदं मण्डपं वृत्तसंज्ञं शुभं (कुण्डं) स्यात्।। १२।।

(बलदाभाष्यम्) **पुरतोऽग्रतः कस्येत्यत आह चतुरस्रस्य सर्वेषां कुण्डानां प्रकृतिभूतत्वात् त्रिकोणस्य पूर्वाभिमुखस्थिततत्वाच्च चतुरस्रमध्यगतायाः पूर्वापररेखायाः पूर्वविन्दोरित्यर्थः वह्न्यंशं क्षेत्रस्य तृतीयांशं निधाय संयोज्य वर्धयित्वेति यावत्। पुनश्च श्रोण्योः फलकयोः (कटोना श्रोणिपलकमित्यमरः)। पश्चिमविन्दुस्थदक्षिणोत्तररेखाया उभयपार्श्वयोरित्यर्थः। चतुर्थांशकं क्षेत्रस्य चतुर्भागं निधाय त्रिषु चिह्नेषु त्रिष्वपि दानाग्रचिह्नेषु सूत्रदानतो रेखाकरणेनेदं कष्टोज्झितं सुखसाध्यमेतेन स्थूलमिदमिति सूचितं सूक्ष्मार्थं वास्तवकुण्डसिद्धिर्विलोक्येति। त्र्यस्रि त्रिकोणं स्यादत्र विदुषामुपका-**

त्रिकोणकुण्डस्वरूपम्

त्रिकोणसारिणी

हस्तः		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
अग्रवृद्धि	अं	८	११	१३	१६	१७	१९	२१	२२	२४	२५
	य	०	२	७	०	७	५	१	२	०	२
	यू	०	५	०	०	०	०	२	३	०	३
श्रोणिवृद्धि	अं	६	८	१०	१२	१३	१४	१५	१६	१८	१९
	य	०	४	२	०	३	५	७	६	०	०
	यू	०	०	०	०	२	४	०	०	०	०
ऊर्ध्वमान	अं	३२	४५	५४	६४	७१	७८	८४	८९	९६	१०१
	य	०	२	७	०	४	३	५	१	०	१
	यू	०	५	०	०	०	०	२	३	०	३
भूमिमान	अं	३६	५१	६२	७२	८०	८८	९५	१००	१०८	११३
	य	०	०	१	०	३	१	२	३	०	७
	यू	०	०	०	०	४	०	०	०	०	०

रायैकहस्तमारभ्यादशहस्तत्रिकोणनिर्माणाय फलज्ञानाय च त्रिकोणसारिण्यां वर्धमानादिकमानीय मया लिखितमनया सर्वं ज्ञात्वा सुखेन कुण्डरचना कार्येति।।

जिनांशे कृते चतुर्विंशतिधा विभक्ते क्षेत्रे स्वस्य जिनांशकेन चतुर्विंशत्यंशकेन सहितैर्युक्तैर्विश्वांशैस्त्रयोदशभागैर्मितेन तत्तुल्येन व्यासार्धेन मण्डलं विरचयेदिति शेषः। इदं शुभं शुभप्रदं वृत्तसंज्ञं कुण्डं स्यात्। अत्रापि लाघवायैकहस्तमारभ्यादशहस्तवृत्तकुण्डनिर्माणाय वृत्तकुण्डसारिण्यां व्यासादिकमानीय मया लिखितमनयेष्टकुण्डस्य व्यासादिकं ज्ञात्वा तद्रचना सुखेन कर्त्तुं शक्येति।। १२।।

ज्योत्स्ना- प्रकृत श्लोक द्वारा त्रिकोण एवं वृत्तकुण्डनिर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट की गई है। उनमें से प्रथमतः त्रिकोण कुण्डनिर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के नैर्ऋत्य कोणस्थित कोष्ठ के मध्य को लेकर प्रथमतः चतुरस्र बना ले; तत्पश्चात् चतुरस्र के मध्य अर्थात् बारह अंगुल पर पश्चिम से पूर्व की ओर रेखा खींचकर पूर्वरेखा को बाहर की ओर आठ अंगुल बढ़ा दे, साथ ही दक्षिण-उत्तर श्रोणिस्थान में दोनों ओर छः-छः अंगुल बढ़ा कर दोनों का सूत्र मध्य की रेखा में पूर्व की ओर मिलाने से एक अत्यन्त सुन्दर त्र्यस्र अर्थात् त्रिकोण कुण्ड बन जाता है। क्षेत्रफल-ज्ञान हेतु पूर्व में दी गई सारिणी का अवलोकन करना चाहिए।

वृत्तकुण्डस्वरूपम्
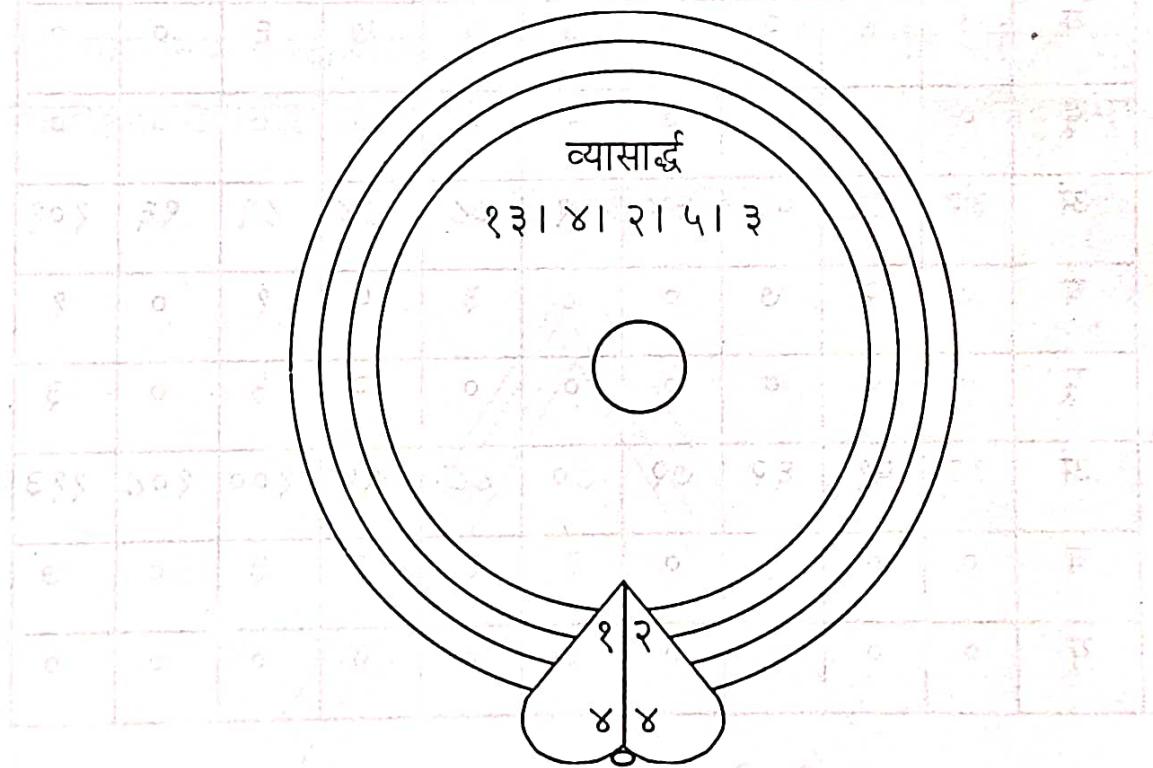
त्रिकोणकुण्ड की निर्माणप्रक्रिया स्पष्ट करने के उपरान्त उपरिदर्शित वृत्तकुण्डनिर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः मण्डप के पश्चिम कोष्ठक का मध्य निकालकर चौबीस अंगुल का चतुरस्र साधित करे। पश्चात् तेरह अंगुल के

चौबीसवें भाग (०। ४। २। ५। ३)को तेरह अंगुल में जोड़ दे। इस प्रकार १३। ४। २। ५। ३ परिमाण का परकाल मध्य बिन्दु पर रख कर चारो ओर घुमाने से एक अत्यन्त सुन्दर वृत्तकुण्ड आकार ग्रहण कर लेता है। वृत्तकुण्ड के क्षेत्रफलज्ञान हेतु सारिणी का अवलोकन करना चाहिए; जो कि निम्नवत् है-

वृत्तकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१३	१९	२३	२७	३०	३३	३५	३७	४०	४२
	य	४	१	३	०	२	१	६	५	५	६
	यू	२	३	७	५	०	१	४	६	०	३
	ली	५	५	१	२	३	३	७	६	०	६
	वा	३	१	०	५	५	०	७	७	०	७
व्यास	अं	२७	३८	४६	५४	६०	६६	७१	७५	८१	८५
	य	०	२	७	१	४	२	५	३	२	४
	यू	५	७	६	२	०	२	१	५	०	७
	ली	२	२	२	५	७	६	७	५	०	५
	वा	६	२	०	२	२	०	६	६	०	६

स्रग्धरया षडस्रमाह-

भक्ते क्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तैः
व्यासार्धान्मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे चेन्दुदिक्तः।

षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकन्तु हित्वा
नाशे सन्ध्यर्त्तुदोषामपि च वृतिकृतेर्नेत्ररम्यं षडस्रम्।।१३।।

विषमषडस्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४९	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१८	२५	३१	३६	४०	४४	४८	५०	५४	५७
	य	२	६	५	४	६	५	२	६	६	५
	यू	०	६	१	०	१	२	२	६	०	४
लघुभुमि	अं	१०	१४	१८	२१	२४	२५	२७	२९	३१	३३
	य	४	७	२	०	३	६	७	२	४	२
	यू	२	३	१	४	०	२	०	६	७	३
लघुलम्ब	अं	९	१२	१५	१८	२०	२२	२४	२५	२७	२८
	य	१	७	६	२	३	२	१	३	३	६
	यू	०	३	४	०	०	५	१	३	०	६
बृहद् भूमि	अं	३१	४४	५४	६३	७३	७७	८३	८८	९४	९९
	य	४	६	६	१	१	२	५	०	६	७
	यू	७	१	४	६	०	७	०	४	५	३
बृहद् लम्ब	अं	२७	३८	४७	५४	६१	६७	७२	७६	८२	८६
	य	३	६	३	६	१	०	३	२	१	४
	यू	०	१	६	०	२	०	३	१	०	२

विषमषडस्रकुण्डस्वरूपम्
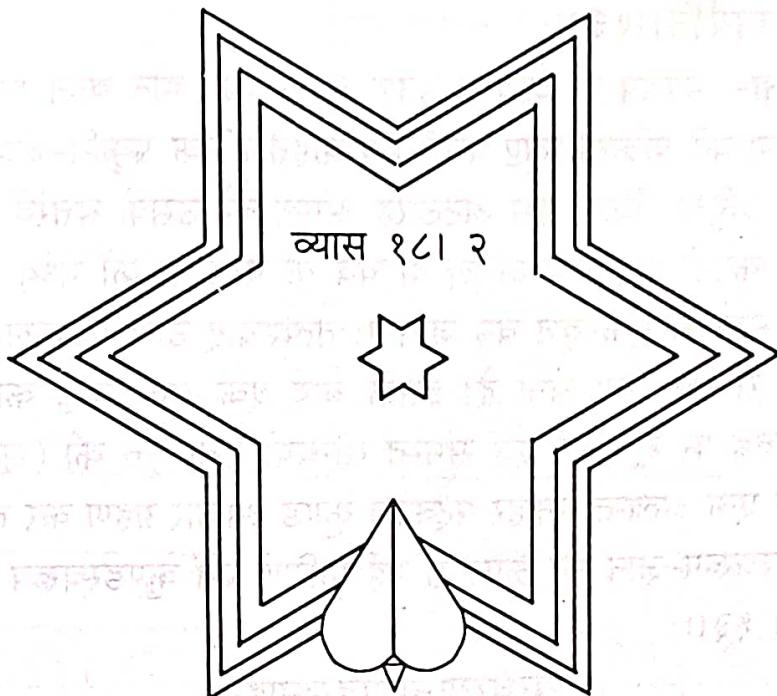
अन्वयः– जिनांशैः भक्ते क्षेत्रे स्वाक्षिशैलांशयुक्तैः धृतिमितलवकैः व्यासार्धात् मण्डले (कृते सति) तन्मितधृतगुणके कर्कटे च इन्दुदिक्तः षट् चिह्नेषु (सम्पादितेषु) एकम् एकं हित्वा रसमितगुणकान् प्रदद्यात् सन्ध्यर्तुदोषाम् अपि च वृत्तिकृतेः नाशे (कृते सति) नेत्ररम्यं षडस्रं स्यात्।। १३।।

(बलदाभाष्यम्) **जिनांशैर्भक्ते चतुर्विंशतिधा विभक्ते क्षेत्रे स्वस्याक्षिशैलांशैर्द्विसप्तत्यंशैर्युक्तैः सहितैर्धृतिमितलवकैर्जिनांशानामष्टादशभागैर्व्यासार्धान्मण्डले वृत्ते कृत इति शेषः। तन्मितधृतगुणके व्यासार्धतुल्यगृहीतडोरके कर्कटे च गृहीते इन्दुदिक्त उत्तरदिशः सकाशात् षट्चिह्नेषु सम्पादितेष्विति शेषः। एतदुक्तं भवति कर्काटकस्यैकमग्रमुत्तरदिशि धृत्वा वृत्तोपरि भ्रामणेन तस्य समानाः षड्विभागा भवेयुस्तत्रोत्तरदिश एवैकमेकमेकैकं चिह्नं हित्वा त्यक्त्वा रसमितगुणकान् षट्संख्याकपूर्णज्यासूत्रान् प्रदद्यात्। अनन्तरं सन्धौ भवः सन्ध्यः दिगादिभ्यो यदिति यत्प्रत्यये कृते यचि भमित्यनेन भसंज्ञा कृते यस्येति चेत्यनेनेकारलोपे कृते सन्ध्य इति पदं सिद्धम्। तत्र ये ऋतवः षड्दोषो भुजास्तेषां अपि च वृत्तेर्वृत्तस्य कृतिरुपकरणं तस्यापि नाशे मार्जने कृते नेत्ररम्यं नेत्राह्लादकरं षडस्रं षट्कोणं स्यात्। अत्र**

विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तषडस्रकुण्डनिर्माणाय व्यासादिकमानीय प्रथमषडस्रकुण्डसारिण्यां लिखितमस्तीत्यनया व्यासादिकमवगम्य सुखेन कुण्डरचना कार्येति॥१३॥

ज्योत्स्ना- मण्डप के वायव्य कोण में स्थापित होने वाले षडस्र (षट्कोण) कुण्ड के निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रकृति-क्षेत्र चौबीस अंगुल में से अट्ठारह अंगुल लेकर, उस अट्ठारह अंगुल को उसके बत्तरवें भाग अर्थात् दो यव से संयुक्त करके अट्ठारह अंगुल दो यव के परकाल को मध्य भाग में रखकर घुमा दे। ऐसा करने से एक वृत्त बन जायेगा। तत्पश्चात् उसी परकाल-निर्मित वृत्त में उत्तर की ओर से छः चिह्न बना दे। इसके बाद एक-एक चिह्न का परित्याग कर तीसरे-तीसरे चिह्न पर सूत्र देने एवं समस्त सन्धियों तथा वृत्त की (सूत्र से बनी) रेखा को मिटा देने से एक अत्यन्त मनोहर षट्कोण कुण्ड आकार ग्रहण कर लेगा। क्षेत्रफल-ज्ञान एवं कुण्डस्वरूप-ज्ञान हेतु ऊपर दी गई सारिणी एवं कुण्डस्वरूप का अवलोकन करना चाहिए॥ १३॥

स्रग्धरयान्यत्षडस्रमाह-

अथवा जिनभक्तकुण्डमानात्तिथिभागैः स्वस्वभूपभागहीनैः।
मितकर्कटोद्भवे तु वृत्ते विधुदिक्तः समषड्भुजैः षडस्रम्॥१४॥

अन्वयः- अथवा जिनभक्तकुण्डमानात् तिथिभागैः स्वस्वभूपभागहीनैः मितकर्कटोद्भवे तु वृत्ते विधुदिक्तः समषड्भुजैः षडस्रं (कुण्डं स्यात्)॥१४॥

(बलदाभाष्यम्) **अथवा प्रकारान्तरेण जिनैश्चतुर्विंशत्या विभक्तं यत्कुण्डमानं क्षेत्रप्रमाणं तस्मात् तिथिभागैः जिनांशानां पञ्चदशभागैः किंविशिष्टैः स्वस्य खभूपभागैः षष्ठ्यधिकशततमांशैर्हीनै रहितैस्तन्मितकर्कटोद्भवे तत्तुल्यव्यासार्धोत्पन्ने वृत्ते तेनैव कर्काटकेनोत्तरविन्दुतः समषड्भागे कृते वृत्त इति शेषः, तु पुनः विधुदिक्तः सौम्यदिशः सकाशात् समषड्भुजैः समानर्त्तुभुजैर्द्वितीयं षडस्रं स्यात्। अत्र विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादश-हस्त कुण्डनिर्माणाय व्यासार्धादिकमानीय द्वितीयषडस्रकुण्डसारिण्यां मया लिखितमनयेष्टकुण्डस्य व्यासार्धादिकमवगम्य द्वितीयषडस्रकुण्डस्य रचना कार्येति॥ १४॥**

ज्योत्स्ना- पूर्व श्लोक द्वारा विषम षडस्रकुण्ड की निर्माण-प्रक्रिया स्पष्ट करने के पश्चात् वर्तमान श्लोक द्वारा सम षडस्रकुण्ड की निर्माण-प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रकृतिक्षेत्र चौबीस अंगुल से अपने १६०वें भाग से हीन तिथिमान

समषडस्रकुण्डसारिणी

हस्तः		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षेत्रफल	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
क्षेत्र	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१४	२१	२५	२९	३३	३६	३९	४१	४४	४७
व्यासार्द्ध	य	७	०	६	६	२	३	३	३	५	०
व्यासार्द्ध	यू	२	७	६	४	३	७	४	३	६	७
कुक्षयो	अं	२२	३१	३८	४५	४९	५४	५९	६२	६७	७०
कुक्षयो	य	२	५	६	१	७	५	१	१	०	५
कुक्षयो	यू	७	३	१	६	५	६	२	१	५	३
ऊर्ध्वमा	अं	१२	१८	२२	२५	२८	३१	३४	३५	३८	४०
ऊर्ध्वमा	य	७	२	३	६	६	४	१	७	५	६
ऊर्ध्वमा	यू	२	३	१	४	६	६	२	०	५	३

समभुजषडस्रकुण्डस्वरूपम्

पन्द्रह को मिलाने से चौदह अंगुल, सात यव और दो यूका परिमाण वाले परकाल से एक वृत्त का निर्माण करे। पश्चात् उसी परकाल से निर्मित्त वृत्त में उत्तर दिशा से छः चिह्न बना दे। उन छहों चिह्नों में परस्पर सूत्र ड़ालने एवं वृत्त की रेखा का परिमार्जन कर देने से एक सुन्दर सम भुजकुण्ड की आकृति स्पष्ट हो जाती है। इसके क्षेत्रफल ज्ञान एवं कुण्डस्वरूपज्ञान हेतु ऊपर दी गई सारिणी एवं कुण्डाकृति का अवलोकन करना चाहिए।। १४।।

पद्मकुण्डं शार्दूलविक्रीडितवृत्तेनाह-

अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके यत्रादिमं कर्णिका
युग्मे षोडशकेशराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागोनिते।
भक्ते षोडशधा शरान्तरधृते स्युः कर्कटेऽष्टौ छदाः
सर्वांस्तान्खनकर्णिकां त्यज निजायामौच्चकां स्यात्कजम्।।१५।।

अन्वयः- अष्टांशात् च यतः वृत्तशरके (निर्मिते) यत्र आदिमं (वृत्तं) कर्णिका स्यात्। युग्मे (वृत्ते) षोड़शकेशराणि स्युः। चरमे (वृत्ते) स्वाष्टत्रिभागोनिते च (दिक्षु विदिक्षु अन्तरा च समं) षोडशधा भक्ते (तथा च) शरान्तरधृते कर्कटे (सति परावर्तनेन) अष्टौ छदाः स्युः। तान् सर्वान् (छदान् कर्णिकाकेसर-रहितद्वितीयतुर्यवृत्तभागांश्च)। खन निजायामौच्चकां कर्णिकां त्यज, (इत्थं कृते सति) कुजं कुण्डं स्यात्।। १५।।

(बलदाभाष्यम्) **यतो यस्मात् चकाराच्चतुरस्रमध्यात्। अष्टांशात्क्षेत्र-स्याष्टमांशात् चकरादेकादिभागवृद्ध्या वृत्तानां शरकं पञ्चकं तस्मिन् निर्मित इति शेषः। यत्र यस्मिन् वृत्तपञ्चके आदिमं प्रथमं वृत्तं कर्णिका कमलबीज-कोशस्य कर्णिकेत्यभिधा युग्मे द्वितीयवृत्ते षोड़श केशराणि केशरस्थानानि अन्यानि पत्राणि स्युः। स्वस्याष्टभागस्याष्टत्रिभागेनाष्टत्रिंशदंशेनोनिते चरमे-ऽन्तिमे व्यासार्धे तदुत्पन्नवृत्त इत्यर्थः। षोड़शधा भक्ते षोड़शविभागे कृते शराणां पञ्चानां चिह्नानामन्तरेऽवसाने धृते कर्कटे भ्रामणेनाष्टौ छदाः पत्राणि स्युरेतदुक्तं भवति अन्तिमवृत्तं समं षोडशधा विभज्य अत्र दिग्विदिशो-रन्तरालचिह्ने कर्काटकस्यैकमग्रं धृत्वान्यप्रान्तस्य तस्मात्पश्चिमे चिह्ने धारितस्य भ्रामणेनाष्टौ पत्राणि समुत्पद्यन्ते। तान् सर्वान् केशरादीन् खन निजः स्वीयो य आयामो व्यासस्तदुच्चामुत्सेधां कर्णिकां कर्णिकावृत्तं त्यज मा खनेत्यनेन गर्त्तप्रमाणं सूचितमेवं कजं पद्मकुण्डं स्यात्। अत्र कर्तॄणामुप-**

कारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणाय व्यासार्धादिकमानीय मया पद्म-कुण्डसारिण्यां लिखितमनयेष्टकुण्डरचनासुखेन सुज्ञैर्विधेयेति॥१५॥

पद्मकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ०	वर्गांगुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
प्रथम व्यासार्द्ध	अं	३	४	५	६	६	७	७	८	९	९
	य	०	२	१	०	५	२	७	२	०	३
	यू	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
चतुर्थ व्यासार्द्ध	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
	यू	०	०	४	०	४	०	०	४	०	४
पंचम व्यासार्द्ध	अं	१४	२१	२५	२९	३३	३६	३९	४१	४४	४७
	य	७	१	७	६	२	४	३	४	६	१
	यू	३	१	०	६	६	२	७	५	१	४
चतुर्थ व्यास	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
	यू	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
पंचम व्यास	अं	२९	४२	५१	५९	६६	७३	७८	८३	८९	९४
	य	६	२	६	५	५	०	७	१	४	३
	यू	६	२	०	४	४	४	६	२	२	०

ज्योत्स्ना- समस्त कुण्डों में श्रेष्ठ विकसित कमल की आकृति वाले पद्म-कुण्ड के निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के उत्तर दिशा-स्थित कोष्ठक में चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर मध्य केन्द्र से तीन अंगुल का पर-काल घुमाने पर जो वृत्त बनता है उसे कर्णिका कहते हैं। पुनः छः अंगुल का परकाल घुमाने पर जो वृत्त बनता है, उसी में सोलह केसरों का स्थान रहता है। पुनः नव अंगुल एवं बारह अंगुल का परकाल घुमाने से तीसरे एवं चौथे वृत्त बनते हैं। अन्त में चौदह अंगुल, सात यव और तीन यूका व्यासार्ध वाला परकाल घुमाने से पाँचवाँ वृत्त बनता है। इस प्रकार पद्मकुण्ड में कुल पाँच वृत्त होते हैं। इनमें दिशा-विदिशा में सूत्र डालने से इनका आठ भाग हो जाता है, जिसमें पुनः उनके मध्य में सूत्र ड़ालने से बराबर-बराबर सोलह भाग बन जाते हैं। पाँचवें और चौथे वृत्त की दिक् रेखा से विदिक् जाने वाली तिरछी रेखा डालने से सोलह पत्र निकल आते हैं और अन्त में परकाल को ऊपर तथा भीतर से पत्ररेखा से संलग्न करने एवं वृत्तरेखा का परिमार्जन कर देने पर विकसित कमल की आकृति वाला एक सुन्दर कुण्ड सामने आ जाता है। पश्चात् कुण्ड को स्वच्छ एवं शोभायमान बनाने के लिए कर्णिकास्थान के वृत्त को छोड़कर खनन करने का निर्देश ग्रन्थकार ने दिया है। वैसे व्यवहार में खनन करने या छोड़ने का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता; क्योंकि कुण्ड के चौथे एवं पाँचवें वृत्त में दल सामने आ जाते हैं तथा प्रथम वृत्त में कर्णिका एवं दूसरे वृत्त में केसर लगवाई जाती है। इसके क्षेत्रफल एवं कुण्डस्वरूपज्ञान हेतु उपर्युक्त सारिणी एवं निम्न कुण्डाकृति का अवलोकन करना चाहिए।। १५।।

पद्मकुण्डस्वरूपम्
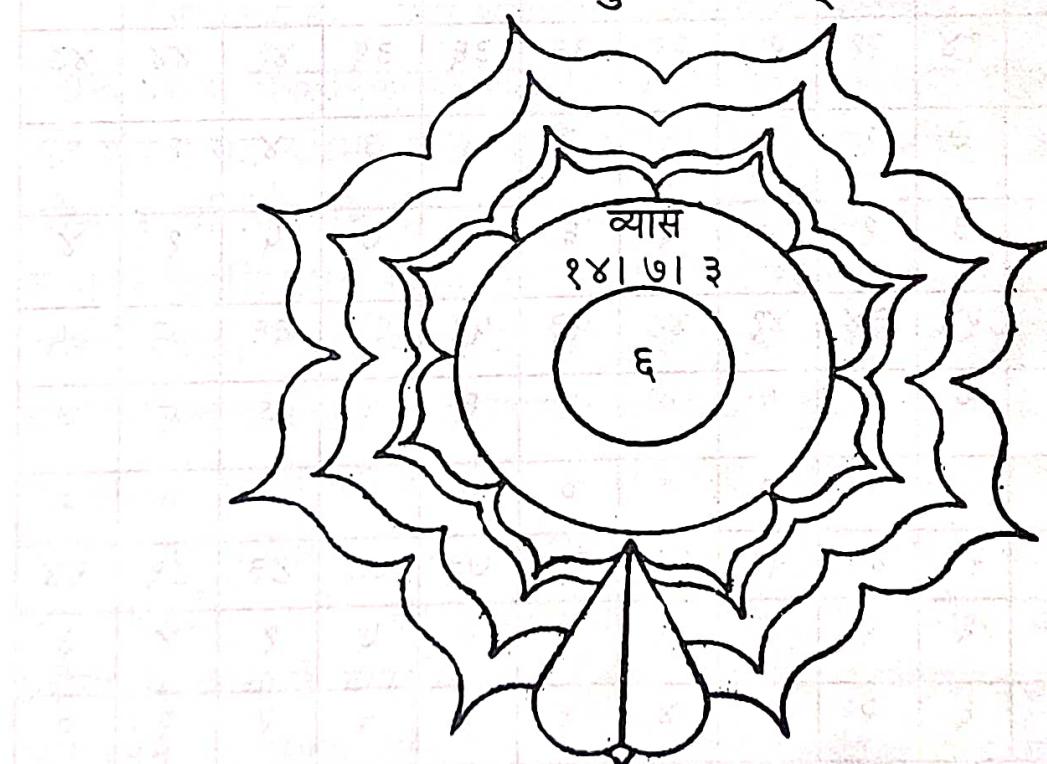
विषमाष्टास्रकुण्डमुपजातिकयाह-

क्षेत्रे जिनांशे गजचन्द्रभागैः स्वाष्टाक्षिभागेन युतैस्तु वृत्ते।
विदिग्दिशोरन्तरतोऽष्टसूत्रैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम् ॥१६॥

अन्वयः- क्षेत्रे जिनांशे (कृते सति) स्वाष्टाक्षिभागेन युतैः गजचन्द्रभागैः

विषमाष्टास्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ	वर्गांगुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	ह	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२
	अं	१८	३	८	१३	१७	२२	१	३	७	१०
	य	५	०	२	२	६	६	१	६	७	६
	यू	१	१	५	२	४	१	६	६	३	६
बृहत्कोटि	अं	३४	४९	५९	६८	७७	८६	९०	९५	१०३	१०८
	य	४	७	५	६	१	२	६	६	२	५
	यू	१	३	३	६	६	६	०	१	३	२
बृहद् भुज	अं	१४	२०	२४	२८	३२	३५	३७	३९	४२	४५
	य	२	५	५	४	०	६	५	५	६	०
	यू	१	३	७	२	०	२	२	३	३	२
लघुभुज	अं	१०	१४	१७	२०	२२	२५	२६	२८	३०	३१
	य	१	५	३	१	४	२	४	०	२	६
	यू	०	०	६	१	७	२	७	३	०	४

विषमाष्टास्रकुण्डस्वरूपम्
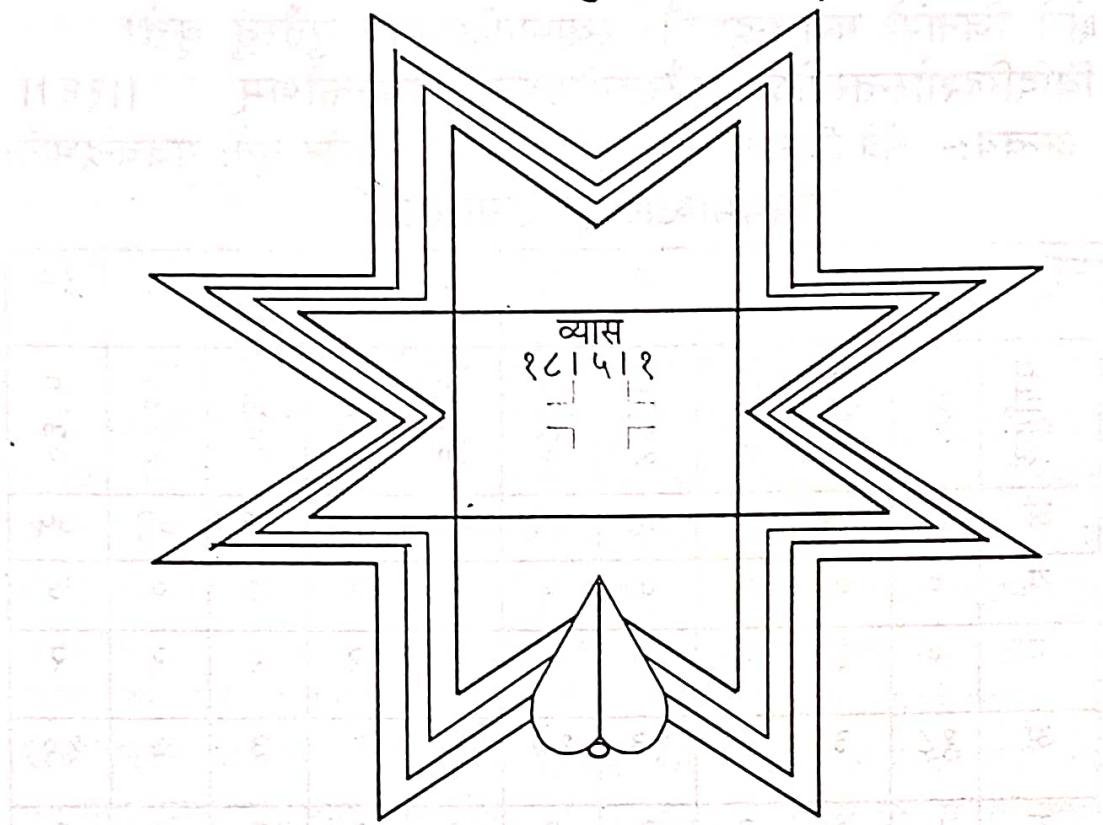
वृत्ते (कृते सति) विदिग्दिशोः अन्तरतः तृतीययुक्तैः अष्टसूत्रैः इदम् अष्टकोणं कुण्डं स्यात्।।१६।।

(बलदाभाष्यम्) जिनांशे चतुर्विंशतिभागे कृते क्षेत्रे गजचन्द्रभागैर्जिनांशानामष्टादशभागैः किम्विशिष्टैः स्वस्याष्टाक्षिभागेनाष्टविंशत्यंशेन युतैस्तुकाराद्व्यासार्धैः कृते वृत्ते। विदिश ईशानाग्निनैर्ऋत्यवायवो दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराः तयोरन्तरतो मध्यात्। सार्वविभक्तिकस्तस्। त्रयाणां संख्यानां पूरकस्तृतीयस्तेन युक्तैरेतदुक्तंभवति। विदिग्दिशोर्मध्येऽष्टचिह्नोत्पादनेन वृत्तस्यान्येऽप्यष्टौ समा विभागा भवेयुस्तत्रैकचिह्नतः प्रतित्रिभागान्तगामिभिरष्टसूत्रैः पूर्णज्यारूपैरिदमष्टकोणं स्यात्। अत्र कोणानां विषमत्वाद्विषमाष्टास्रकमित्यस्यसंज्ञेति। विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणायोपकरणानि विषमाष्टास्रकुण्डसारिण्यां लिखितानि तान्यवगम्य सुखेन कुण्डरचना कार्येति।।१६।।

ज्योत्स्ना- विषमभुज अष्टास्र (अष्टकोण) कुण्ड के निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के ईशान कोणस्थित कोष्ठक में प्रथमतः चौबीस अंगुल का एक चतुष्कोण तैयार करे; तदनन्तर अट्ठाइसवें भाग (०।५।१) युक्त अट्ठारह

अंगुल अर्थात् अट्ठारह अंगुल, पाँच यव और एक यूका के व्यासार्ध को परकाल से वृत्त बनाकर पूर्वोक्त पद्मकुण्ड की भाँति ही दिशा-विदिशा एवं उनके मध्य में सोलह सूत्र डाले। फिर दिशा-विदिशा के आठ सूत्रों को मिटा दे। पश्चात् उत्तर दिशा की दूसरी रेखा से दो रेखा छोड़कर तीसरी पूर्व की रेखा से मिली हुई सूत्र की रेखा खींचे और उत्तर की दूसरी रेखा से दक्षिण की ओर स्थित चिह्न तक सूत्र से सीधी रेखा खींचे। पुनः ईशान-पूर्व के मध्य स्थित चिह्न से दक्षिण दिशा के दूसरे चिह्न तक, नैर्ऋत्य-पश्चिम के मध्यस्थित चिह्न से उत्तर की पहली रेखा तक, उत्तर-पश्चिम के मध्य स्थित चिह्न से दक्षिण के चिह्न तक तथा उत्तरस्थित चिह्न से दक्षिणस्थित चिह्न तक सीधी रेखा खींच कर वृत्त एवं मध्य की रेखाओं का परिमार्जन करने से एक भव्य विषम अष्टकोण कुण्ड की आकृति स्पष्ट हो जायेगी। इसके क्षेत्रफल एवं कुण्ड के स्पष्ट ज्ञान हेतु उपर्युक्त सारिणी एवं कुण्डस्वरूप का अवलोकन करना चाहिए।।१६।।

समाष्टास्रकुण्डमुपजातिकयाह-

मध्ये गुणे वेदयमैर्विभक्ते शक्रैर्निजर्ष्यब्धिलवेन युक्तैः।
वृत्ते कृते दिग्विदिशान्तराले गजैर्भुजैः स्यादथवाष्टकोणम्।।१७।।

अन्वयः- अथवा मध्ये गुणे वेदमयैः विभक्ते (सति) निजर्ष्यब्धिलवेन युक्तैः शक्रैः वृत्ते कृते (सति) दिग्विदिशान्तराले गजैः भुजैः (दत्तैः सद्भिः) अष्टकोणं (कुण्डं स्यात्)।। १७।।

(बलदाभाष्यम्) **वेदयमैश्चतुर्विंशतिभिर्विभक्ते मध्ये गुणे क्षेत्रे। निजैः स्वीयैः ऋष्यब्धिलवैः सप्तचत्वारिंशदंशकैर्युक्तैः सहितैः शक्रैर्जिनांशानां**

समाष्टास्रमृदङ्गाकारकुण्डस्वरूपम्
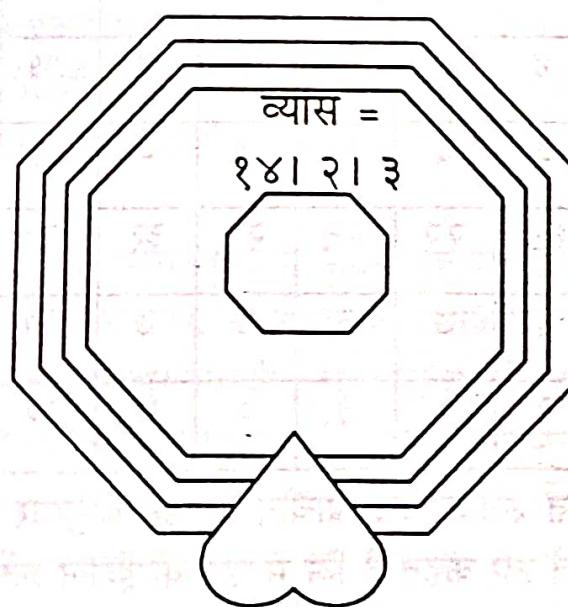
चर्तुदशभागैस्तत्तुल्यकर्काटकेन कृते सम्पादिते वृत्ते दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराः विदिश ईशानाग्निनैर्ऋत्यवायवस्तयोरन्तराले मध्ये सम्पादिताष्टचिह्नमध्य इति शेषः। गजैरष्टभिर्भुजैः सरलरेखाभिरथवान्यत्समाष्टास्रकुण्डं स्यात्। अत्रैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणाय फलानयनाय च व्यासादिकमानीय समाष्टास्रकुण्डसारिण्यां मया लिखितमनयेष्टकुण्डस्य व्यासादिकं ज्ञात्वा सुखेन कुण्डरचना कार्येति॥१७॥

समाष्टास्रमृदङ्गाकारकुण्डसारिणी

हस्तः		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे०फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र.	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६'	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१४	२०	२४	२८	३१	३४	३७	३९	४२	४५
	य	२	२	६	४	७	५	६	६	७	१
	यू	३	५	३	६	४	०	०	१	०	०
भुज	अं	१०	१५	१८	२१	२४	२६	२८	३०	३२	३४
	य	७	४	७	७	३	४	७	३	६	४
	यू	४	३	६	१	४	०	१	३	४	२
अग्र	अं	१३	१८	२२	२६	२९	३१	३४	३६	३९	४१
	य	१	६	७	३	४	७	७	५	५	५
	यू	६	२	०	३	०	७	०	७	४	४

ज्योत्स्ना– प्रकृत श्लोक द्वारा प्राचीन कुण्डग्रन्थानुसार समाष्टकोण कुण्ड की निर्माणप्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मण्डप के ईशान कोष्ठ के मध्य को चिह्नित करके चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर सैंतालीसवें अंश से युक्त चौदह अर्थात् चौदह

अंगुल, दो यव और तीन यूका के परकाल से मध्यबिन्दु से घुमाकर वृत्त का निर्माण करे। तदनन्तर पूर्व की तरह ही दिशा-विदिशा एवं उनके मध्य में बराबरी के सोलह चिह्न देकर दिशा-विदिशा के चिह्नों को मिटाकर शेष बचे चिह्नों में परस्पर एक समान सूत्र ड़ालने एवं वृत्त की रेखा का परिमार्जन करने से एक शुद्ध समभुज अष्टकोण कुण्ड स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इसका क्षेत्रफल एवं कुण्डाकृति का ज्ञान उपर्युक्त सारिणी को देखकर करना चाहिए।। १७।।

अल्पहवने स्थण्डिलं वसन्ततिलकेनाह-

अथवाऽपि मृदा सुवर्णभासा करमानं चतुरंगुलोच्चमल्पे।
हवने विदधीत वांगुलोच्चं विबुधः स्थण्डिलमेव वेदकोणम्।।१८।।

अन्वयः- अथवा अल्पे हवने अपि विबुधः सुवर्णभासा मृदा करमानं चतुरंगुलोच्चं वा अंगुलोच्चं वेदकोणं स्थण्डिलमेव विदधीत।। १८।।

(बलदाभाष्यम्) **अथवाप्यल्पकालसाध्येऽल्पे हवने विबुधाः सुवर्णभासा पीतवर्णया मृदा मृत्तिकया करमानमेकहस्तायामविस्तृतं चतुरंगुलोच्चं चतुरंगुलोच्छ्रितं वांगुलोच्चमेकांगुलोत्सेधं वेदकोणं चतुष्कोणं स्थण्डिलमुक्तलक्षणवेदिकायाः स्थण्डिलमिति संज्ञा विदधीत कुर्यात्। तथोक्तं तन्त्रसारे-**

मृदा सुवर्णया वापि सूक्ष्मवालुकयापि वा।
अंगुलोच्चं तथा वेदांगुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः।।
चतुष्कोणमुदक्प्राचीप्लवमल्पाहुतौ शुभम्।
पञ्चांगुलोच्चमथवा वस्वंगुलसमुन्नतम्।। **इति।।१८।।**

ज्योत्स्ना- स्वल्प हवन में स्थण्डिल बनाने की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि- अथवा अल्प हवन में भी विद्वान् आचार्य को पीले वर्ण की अथवा सुवर्णसदृश लाल वर्ण की मिट्टी से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा, चार अंगुल या एक अंगुल ऊँचा एक समान चौकोर स्थण्डिल (वेदी) का निर्माण करना चाहिए। कहा भी गया है-

मृदा सुवर्णया वाऽपि सूक्ष्मबालुकयाऽपि वा।
अंगुलोच्चं तथा वेदांगुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः।।
चतुष्कोणमुदक्प्राची प्लवमल्पाहुतौ शुभम्।
पञ्चांगुलोच्चमथवा वस्वंगुलसमुन्नतम्।।

किसी-किसी का मत है कि थोड़े हवन के लिए निर्मित स्थण्डिल में भी मेखला एवं योनि बनानी चाहिए। वस्तुतः मेखला आभूषणस्वरूपा एवं हविरक्षार्थ निर्मित की जाती है एवं योनि का विधान फलप्राप्ति हेतु किया जाता है। इसीलिए स्थण्डिलरचना

में भी इन दोनों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही सूतसंहिता में इस प्रकार कहा गया है-

स्थण्डिले मेखलाः कार्याः कुण्डोक्तस्थण्डिलाकृतिः।
योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तन्त्रवेदिभिः।।
समेखलं स्थण्डिलन्तु प्रशस्ते होमकर्मणि।
कण्ठं तु वर्जयेत्तत्र खाते कण्ठः प्रकीर्तितः।।

मेखला आदि का प्रमाण तन्त्रान्तरों में इस प्रकार कहा गया है-

स्थण्डिले मेखलादीनां प्राप्तिरस्त्येव शास्त्रतः।
अग्न्यायतनधर्मा हि यतस्ते मेखलादयः।।

अल्पहवनार्थ बनाये जाने वाले स्थण्डिल का स्वरूप निम्नवत् है-

स्थण्डिलस्वरूपम्
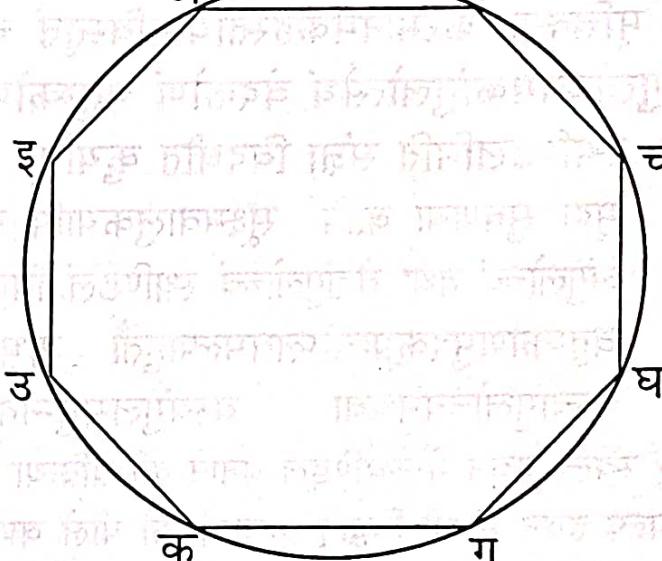
इस प्रकार श्रीमद्विट्ठलदीक्षितकृत मण्डपकुण्डसिद्धि की श्रीनिवास शर्माकृत 'ज्योत्स्ना' हिन्दी व्याख्या में कुण्ड-सिद्धिनामक द्वितीय अध्याय पूर्ण हुआ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(खातकण्ठमेखलायोनिप्रकरणम्)

खातकण्ठयोर्मानमनुष्टुभाह–

खातं क्षेत्रसमं प्राहुरन्ये तु मेखलां विना।
कण्ठो जिनांशमानः स्यादर्कांश इति चापरे।। १।।

अन्वयः–(आचार्याः) क्षेत्रसमं खातं प्राहुः, तु अन्ये मेखलां विना (प्राहुः)। कण्ठः जिनांशमानः स्यात्, च अपरे अर्कांशः कण्ठः (स्यादिति प्राहुः)।। १।।

(बलदाभाष्यम्) **आचार्याः क्षेत्रसमं क्षेत्रतुल्यं खातं गर्त्तं प्राहुः, परमिदं मेखलया सहितमर्थात् मेखलोच्छ्रायोनस्वस्वक्षेत्रसमां भूमिं निखनेदित्यर्थः। तथोक्तं सिद्धान्तशेखरे**–

खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वमेखलया सह। **इति।**

मोहशूलोत्तरेऽपि– हस्तमानं खनेत्तीर्यगूर्ध्वमेखलया सह। **इति।**

अन्ये तु मेखलाम्विनैवार्थाद्भूमावेव क्षेत्रसमं खननमाहुः यथा। शारदातिलके– यावात्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्। **इति। प्रयोगसारे च**–

चतुरस्रं चतुःकोणं सूत्रैः कृत्वा यथा पुनः।
हस्तमात्रेण तन्मध्ये तावन्निम्नायतं खनेत्।
चतुर्विंशांगुलायामं तावत्खातसमन्वितम्।। **इति।**

ननु मतद्वैधे कतमस्य प्रामाण्यमित्यत आह– स्मृतिद्वैधे तु विषयः कल्पनीयः पृथक् पृथगिति वचनाद्धवनीयपदार्थस्याण्वमणुभेदेन **पूर्वोत्तरपक्षा**वाश्रयणीयौ। यतोऽनौचित्यादर्थपरिमाणमिति कात्यायनोक्तिः। **अथ च जिनांश**मानः क्षेत्रस्य चतुर्विंशत्यंशः पारिभाषिकांगुलः कुण्डस्य परितः कण्ठः स्यात्। **तथोक्तं कालोत्तरे**–

खाताद्वाह्येऽगुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयम्विधिः।
चतुर्विंशतिमो भागः कुण्डानामंगुलः स्मृतः।।

च पुनरपरे आचार्याः अर्कांशः क्षेत्रस्य द्वादशांशः कण्ठः स्यादिति जगुः। तथोक्तं सोमशम्भौ—

बहिरेकांगुलः कण्ठो द्व्यंगुलस्तु भवेत्क्वचित्। इति।

विदुषामुपकारायैकादिहस्तकुण्डेषु खननादिकमानीय खननसारिण्यां लिखितमनयेष्टकुण्डस्य खननादिकं ज्ञात्वा कुण्डरचना कार्येति॥१॥

ज्योत्स्ना- द्वितीय अध्याय में कुण्डनिर्माण का विवेचन करने के उपरान्त प्रकृत तृतीय अध्याय में कुण्डाङ्गभूत खात एवं कण्ठ का विवेचन किया गया है। यदि यह कहा जाय कि खात की ही कुण्डरूपता होने से उसका पृथक् अङ्गत्व नहीं मानना चाहिए तो यह उचित नहीं है, क्योंकि आकृतिविशेष की संज्ञा ही कुण्ड है। खात तो उससे पृथक् होते ही हैं। इसी को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार ने द्वितीय अध्याय में कुण्डों की आकृति का विवेचन करके प्रकृत तृतीय अध्याय में खनन का निर्देश किया है। श्रौतयाग में भूमि पर रचित वृत्तादि आकृतियों की आहवनीयादि संज्ञा देकर खात के अभाव में भी 'कुण्ड' शब्द का व्यवहार किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि खात को कुण्ड का पृथक् अंग ही माना जाता है। कतिपय विद्वान् आचार्य कुण्ड के क्षेत्र के बराबर ही मेखलामानसहित खात मानते हैं तो कतिपय विद्वान् मेखला को छोड़कर कण्ठ तक के क्षेत्र को सम खात मानते हैं। कुण्डाकृति मेखला की परिधि को छोड़कर एक अंगुल चौड़ा कण्ठ बनवाना चाहिए अर्थात् चौबीस अंगुल लम्बाई-चौड़ाई का चतुरस्र कुण्ड बनवाकर एक अंगुल या किन्हीं-किन्हीं के मत से दो अंगुल चौड़ा कण्ठ छोड़कर ही मेखला बनवानी चाहिए। कण्ठ न लगाने से दोष भी बताया गया है-

भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम्।

मेखलासहित खात के पक्ष में मेखला की ऊँचाईसहित क्षेत्रसम खात अर्थात् नौ अंगुल की मेखला हो तो पन्द्रह अंगुल का, बारह अंगुल की मेखला हो तो बारह अंगुल का, सात अंगुल की मेखला हो तो सत्रह अंगुल का, छः अंगुल की मेखला हो तो अट्ठारह अंगुल का और चार अंगुल की एकमेखला पक्ष में बीस अंगुल का खात जानना चाहिए। मेखलासहित खात सूक्ष्म तिल-आज्य-दूर्वा आदि शीघ्र जलने वाले द्रव्यों के लिए होता है और पायस-चरु-बेल आदि आहुति के लिए मेखलासहित खात स्वीकार किया गया है। खात के विषम में शारदातिलक में इस प्रकार कहा गया है-

यावत्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्।

अर्थात् कुण्ड का जितना क्षेत्रविस्तार हो उतना ही खनन करना चाहिए। अन्य आचार्य मेखलासहित खात भी कहते हैं, जैसा कि मोहशूलोत्तर में कहा भी गया है-

हस्तमात्रं खनेत्तिर्यगूर्ध्वं मेखलया सह।

इसके अतिरिक्त निम्न शास्त्रों के वचन भी इसी का समर्थन करते हैं-

पञ्चत्रिमेखलोच्छ्रायं ज्ञात्वा शेषमधः खनेत्। (प्रतिष्ठासारसंग्रह)

खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वं मेखलया सह। (सिद्धान्तशेखर)

उपर्युक्त दोनों पक्षों में प्रथम पक्ष ही समुचित प्रतीत होता है, क्योंकि **कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः** वचन के अनुसार मेखला को कुण्ड का ही अंग माना गया है। मेखला आभूषणरूप है, अतः उसके साथ खात उपपन्न नहीं होता क्योंकि कार्यज्ञान की मान्यता प्रधान में ही होती है, अंग में नहीं। फिर भी ग्रन्थकार ने दोनों ही पक्षों को मान्यता प्रदान की है।

कण्ठविषयक प्रमाण भी विभिन्न शास्त्रों में प्राप्त होते हैं, जैसे कि-

चतुर्विंशतिभागेन कण्ठो वै परिकर्तितः। (महाकपिलपञ्चरात्र)

खातादेकांगुलं त्याज्यं मेखलानां स्थितिर्भवेत्। (पिङ्गलामत)

मेखलानां भवेदन्तः परितो नेमिरंगुलम्। (शारदातिलक)

कुण्डे हस्तमिते कण्ठं कुर्यादेकांगुलं ततः। (सिद्धान्तशेखर)

खाताद्बाह्येऽगुलः कण्ठो द्व्यंगुलः क्वचिदागमे। (सोभशम्भु)

इस प्रकार एक अंगुल का कण्ठ ही सर्वसम्मत है। दो अंगुल का कण्ठ क्वाचित्क होने से त्याज्य ही समझना चाहिए।। १।।

मेखलानामधमतादिपक्षमाह-

अधमा मेखलैका स्यान्मध्यमा मेखलाद्वयम्।
श्रेष्ठास्तिस्रोऽथवा द्वित्रिपञ्चस्वधमतादिकम्।। २।।

अन्वयः- एका मेखला अधमा स्यात्, मेखलाद्वयं मध्यमं (स्यात्), तिस्रः मेखलाः श्रेष्ठाः (स्युः), अथवा द्वित्रिपञ्चसु अधमतादिकं (स्यात्)।।२।।

(बलदाभाष्यम्) **एका मेखला वक्ष्यमाणरूपा अधमा स्यात्। मेखलाद्वयं मध्यमं स्यात्। तिस्रो मेखला श्रेष्ठाः स्युरिति। तथोक्तं क्रियासारे-**

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्।
कुण्डं द्विमेखलं मध्यं नीचं स्यादेकमेखलम्।।

अथवा पक्षान्तरे द्वित्रिपञ्चसु द्विमेखले त्रिमेखले पञ्चमेखले च कुण्डे क्रमादधमतादिकमर्थादधममध्यमोत्तमताः स्युः। तथोक्तं लक्षणसंग्रहे-

मुख्यास्तु पञ्च ताः प्रोक्ता मध्यमास्तिस्र एव च।
द्वे स्यातामधमे पक्षे एका सा त्वधमाधमा।

सोमशम्भुना तु विशेष उक्तः-

त्रिमेखलं द्विजे कुण्डे क्षत्रियस्य द्विमेखलम्।
मेखलैका तु वैश्यस्य............................।। इति।

अत्र द्विजादिकर्तृके याग इति बोध्यं, न तु जातिपरत्वेनोक्तकुण्ड इति।।२।।

ज्योत्स्ना- अब कण्ठ से बाहर बनाई जाने वाली मेखला का विवेचन करते हुए कहते हैं कि एक मेखला की रचना अधम, दो की मध्यम और तीन मेखला की रचना श्रेष्ठ कही गई है अथवा क्रमशः दो मेखला अधम, तीन मध्यम और पाँच मेखला उत्तम कही गई है। इस सन्दर्भ में विभिन्न शास्त्रों में भी इस प्रकार कहा गया है-

मुख्यास्तु पञ्च ताः प्रोक्ता मध्यमास्तिस्र एव च।
द्वे स्यातामधमे पक्षे एका सा त्वधमाधमा।। (लक्षणसंग्रह)
नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्।
कुण्डं द्विमेखलं मध्यं नीचं स्यादेकमेखलम्।। (क्रियासार)
त्रिमेखलं द्विजे कुण्डे क्षत्रियस्य द्विमेखलम्।
मेखलैका तु वैश्यस्य ....।। (सोमशम्भु)

अर्थात् ब्राह्मण के कुण्ड में तीन मेखला, क्षत्रिय के कुण्ड में दो मेखला और वैश्य के कुण्ड में एक मेखला बनानी चाहिए। कतिपय विद्वानों का मत है कि यहाँ वर्णपरक अर्थ ग्रहण न कर तत्तद्वर्णकर्तृक यज्ञ अर्थ समझना चाहिए। यह मेखला कुण्ड की आकृति के समान ही बनानी चाहिए, जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है-

कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानाञ्च तादृशम्।

भविष्यपुराण में सात मेखलायें बनाने का निर्देश भी प्राप्त होता है, जैसा कि निम्न वचन से स्पष्ट है-

सप्तमेखलकं कुण्डं लक्षहोमे प्रशस्यते।
पञ्चमेखलकं वाथ लक्षकोट्याञ्च योजयेत्।

मेखला के ग्रह, वर्ण और देवताओं का वर्णन परशुरामपद्धति में प्राप्त होता है, जैसा कि वहाँ कहा गया है-

प्रथमा सात्त्विकी ज्ञेया द्वितीया राजसी मता।
तृतीया तामसी तासां देवा ब्रह्माच्युतेश्वराः।। २।।

खातमानं मेखलामानं च रथोद्धतयाह-

अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः संखनेद्भुवमुपर्यनलांशैः।
मेखला विरचयेदपि तिस्रः षड्गजार्कलवविस्तृतिपिण्डाः।।३।।

अन्वयः- अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः भुवं संखनेत्। अनलांशैः उपरि षड्गजार्कलवविस्तृतिपिण्डाः तिस्रः मेखलाः अपि विरचयेत्।। ३।।

(बलदाभाष्यम्) **अष्टधा विहितस्याष्टधा विभाजितस्य कुण्डस्य क्षेत्रस्य ये शरांशाः पञ्चविभागास्तैरर्थात्तत्तुल्यांगुलैर्भुवं कुण्डभूमिं सङ्खनेत्। यथैक-हस्तकुण्डस्याष्टमांशः ३ अस्य पञ्चभागाः १४ तेन पञ्चदशागुलं भुवं सङ्खनेदित्यर्थः। अनलांशाः अष्टमांशस्य त्रयो भागास्तैर्यथैकहस्तकुण्डे नवांगुलैरुपरि भूमेरुपरि तिस्रोऽपि मेखला विरचयेदेवं द्व्यादिहस्तकुण्डेऽपि ज्ञेयमेतेन मेखलया सहितं खातमाचार्यस्याभिप्रेतमिति सूचितं भवति। तथोक्तं विश्वकर्मणा–**

व्यासात्खातः करः प्रोक्तो निम्नं तिथ्यंगुलेन तु।
कण्ठात्परं मेखला तु उन्नता सा नवांगुलैः।। इति।

क्रियासारेऽपि– प्रधानमेखलोत्सेधमुक्तमत्र नवांगुलम्।
तद्बाह्यमेखलोत्सेधमंगुलद्वितयं क्रमात्।।

एतदेकहस्तकुण्डविषयम्। किंविशिष्टा मेखलाः षडगजार्कलववि-स्तृतिपिण्डाः क्षेत्रस्य षडलवैः षष्ठांशैर्गजलवैरष्ट मांशैरर्कलवैर्द्वादशांशैस्तुल्यौ विस्तृतिपिण्डौ विस्तारोच्छ्रिती यासां तास्तथैतदुक्तं भवति यथैकहस्तकुण्डे क्षेत्रस्य षडंशश्चतुरंगुलमष्टमांशस्त्र्यंगुलं द्वादशांशो द्व्यंगुलं तेन प्रथमा मेखला चतुरंगुलविस्तारोच्छ्रायवती द्वितीया त्र्यंगुलविस्तारोच्छ्रायवती तृतीया द्व्यंगुल-विस्तारोच्छ्रायवतीत्येवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। तथोक्तं योगिनीहृदये–

मेखलाः शृणु मे देवि हस्तादिषु विशेषतः।
षण्नागार्कांशसम्भागैर्मिताः स्युर्गोपिताः शुभाः।। ३।।

ज्योत्स्ना– मेखलासहित खात क्षेत्रसम को स्पष्ट करने के साथ-साथ मेखलालक्षण का विवेचन करते हुए कहते हैं कि चौबीस अंगुलात्मक प्रकृतिक्षेत्र को तीन-तीन अंगुल के रूप में विभक्त कर उसमें से पाँच भाग अर्थात् पन्द्रह अंगुल के बराबर क्षेत्रभूमि का खनन करे और प्रकृतिक्षेत्र के शेष बचे तीन भाग अर्थात् नव अंगुल की तीन मेखला निर्मित करे। उनमें से ऊपर प्रथम मेखला कुण्डक्षेत्र का छठा भाग अर्थात् चार अंगुल ऊँची और चार अंगुल चौड़ी, मध्य में द्वितीय मेखला कुण्डक्षेत्र का आठवाँ भाग अर्थात् तीन अंगुल चौड़ी और तीन अंगुल ऊँची तथा सबसे नीचे तृतीय मेखला कुण्डक्षेत्र का बारहवाँ भाग अर्थात् दो अंगुल चौड़ी एवं दो अंगुल ऊँची रखनी चाहिए। जैसा कि योगिनीहृदय में कहा भी गया है–

मेखलाः शृणु मे देवि हस्तादिषु विशेषतः।
षण्नागार्कांशसम्भागैर्मिताः स्युर्गोपिताः शुभाः।।

क्रियासार भी इसी का समर्थन करते हुए कहता है कि–

प्रधानमेखलोत्सेधमुक्तमत्र　नवांगुलम्।
तद्बाह्यमेखलोत्सेधं पञ्चांगुलमिति स्मृतम्।।
तद्बाह्यमेखलोत्सेधमंगुलद्वितयं　क्रमात्।
चतुस्त्रिद्व्यंगुलव्यासो मेखलात्रितयस्य तु।।

अंगुल का लक्षण सोमशम्भु में स्पष्ट किया गया है, तदनुसार ही मेखला, कण्ठ और नाभि बनवानी चाहिए। सोमशम्भु का कथन इस प्रकार है-

कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोंऽगुलसंज्ञकः।
विभज्यानेन कर्तव्या मेखला कण्ठनाभयः।।

खननमेखलासारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
क्षेत्राष्टमांश	अं	३	४	५	६	६	७	८	८	९	९
	य	०	२	२	०	६	३	०	४	०	४
खनन	अं	१५	२१	२६	३०	३३	३६	४०	४२	४५	४७
	य	०	२	२	०	६	७	०	४	०	४
मेखलोच्छ्रुति	अं	९	१२	१५	१८	२०	२२	२४	२५	२७	२८
	य	०	६	६	०	२	१	०	४	०	४
१ मे. उ.	अं	४	५	७	८	९	९	१०	११	१२	१२
	य	०	५	०	०	०	६	५	३	०	५
२ मे. उ.	अं	३	४	५	६	६	७	८	८	९	९
	य	०	२	२	०	६	३	०	४	०	४
३ मे. उ.	अं	२	२	३	४	४	५	५	५	६	६
	य	०	७	४	०	४	०	३	५	०	३

एक से अधिक हाथ वाले कुण्डों में प्रथमतः पट्टिका का निर्माण करना चाहिए। पट्टिकानिर्माण के विषय में कुण्डकारिका में इस प्रकार बताया गया है-

द्वित्र्यादिहस्तकुण्डेषु तावत् काष्ठां च कारयेत्।
तत्र जिनांशकाः कार्या यवयूकादिकं ततः।।
कुण्डं नाभिस्तथा योनिः खातः कण्ठश्च मेखलाः।
तेन काष्ठेन कर्त्तव्यं योन्यादि कुण्डमंशकैः।। ३।।

प्रकारान्तरेणमेखलामानं नाभिमानं व
विपरीताख्यानकीभ्यामाह-

रसांशकादुन्नतविस्तृताश्च तिस्रोऽथवैका युगभागतुल्या।
पञ्चाथवा षट्शरवेदरामद्व्यंशैस्तताः स्युर्नवभागपिण्डा।।४।।
आद्या परास्तच्छरभागहीना जिनांशकण्ठाद्बहिरेव सर्वाः।
कुण्डानुकारा अपि मेखलाः स्युरर्काङ्गभागोच्चततस्तु नाभिः।।५।।

अन्वयः- अथवा रसांशकाद् उन्नतविस्तृताः तिस्रः मेखलाः स्युः एका (मेखला चेद्) युगभागतुल्या (स्यात्)। अथवा षट्शरवेदरामद्व्यंशैः तताः पञ्च मेखलाः स्युः, (तत्र) आद्या नवभागपिण्डा, अपरा च तच्छरभागहीनाः स्युः। अपि च सर्वाः मेखलाः जिनांशकण्ठाद् बहिः कुण्डानुकारा एव स्युः, नाभिः तु अर्काङ्गभागोच्चततः स्यात्।। ४-५।।

(बलदाभाष्यम्) **च पुनः रसांशकादुन्नतविस्तृताः क्षेत्रस्य षडंशादुन्नता उच्छ्रिताः षडंशेनैव विस्तृताः तिस्रो मेखलाः स्युरेतदुक्तम्भवति यथैकहस्त-कुण्डे क्षेत्रस्य षडंशः ४ तेनाधः क्रमात् प्रथमा मेखला द्वादशांगुलविस्तृता चतुरंगुलोच्चा द्वितीयाष्टांगुलविस्तृता चतुरंगुलोच्छ्रिता तृतीया चतुरंगुलविस्तृता तावदेवोच्चेत्येवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। तथोक्तं वाशिष्ठ्याम्-**

प्रथमा मेखला तत्र द्वादशांगुलविस्तृता।
चतुर्भिरंगुलैस्तस्याश्चोन्नतिश्च समन्ततः।।
तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरंगुलमुन्नतः।
अष्टाभिरंगुलैः सम्यग्विस्तीर्णन्तु समन्ततः।।
तस्योपरि पुनः कार्यो वप्रः सोऽपि तृतीयकः।
चतुरंगुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः।। इति।

इयमेव द्वादशांगुलपक्षीया मेखला कथमित्यग्रे विस्तरतः कथयिष्ये। अथवैका मेखला युगभागेन क्षेत्रस्य चतुर्थांशेन तुल्योन्नता विस्तृता च

कार्या यथैकहस्तकुण्डे क्षेत्रस्यास्य २४ चतुर्थांशः ६ तेन षडंगुलोन्नता विस्तृता चैवमन्यत्रापि। तथोक्तं पिंगलामते-

एका षडंगुलोत्सेधा विस्तारा मेखला मता।। इति।

अथवा पञ्चमेखलापक्षे तावच्चतुर्विंशतिधा भक्ते क्षेत्रे लब्धांगुलादिसममेकं पारिभाषिकांगुलं भवेत्। तत्र षट् प्रसिद्धाः शराः पञ्च वेदाश्चत्वारो रामास्त्रयो द्वौ प्रसिद्धौ एतदंशैरर्थात्पारिभाषिकांगुलैर्विस्तृताः प्रथमाद्याः पञ्च मेखलाः स्युस्तत्राद्या प्रथमा मेखला नवभागपिण्डा पारिभाषिका नवांगुलोच्चा स्यादपराश्चतस्रः तस्याः प्रथममेखलोच्छ्रितेर्यः शरभागः पञ्चमांशस्तेन हीनाः स्युरर्थाच्छरभागहीना प्रथमोच्छ्रितिः द्वितीयोच्छ्रितिः पुनस्तेन हीना द्वितीयोच्छ्रितिस्तृतीयोच्छ्रितिः स्यादेवमग्रेऽपि। सिद्धान्तशेखरे-

षड्वाणाब्धिवह्निनेत्रमिताः स्युः पञ्च मेखलाः।

लक्षणसंग्रहे- पञ्च वा मेखलाः कार्याः षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकैः।

प्रथमा कुण्डसहितान्तरोत्सेधनवांगुला।। इति।

अपि च किन्तु सर्वा मेखला जिनांशकण्ठात्पारिभाषिकांगुलसमकुण्डाद्बहिः कुण्डानुकाराः कुण्डसदृशा एव स्युः। पिङ्गलामते-

खातादेकांगुलं त्यक्त्वा मेखलानां स्थितिर्भवेत्।

शारदायाम्- कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानां च तादृशम्।। इति।

तु पुनरर्काङ्गभागाभ्यां क्षेत्रस्य द्वादशांशषडंशाभ्यां समावुच्चतताvुच्छ्रितिविस्तारौ यस्य तथाभूतः कुण्डस्य मध्ये नाभिः कार्यः।।४-४।।

ज्योत्स्ना- पुनः प्रकारान्तर से मेखलामान एवं नाभिमान का विवेचन करते हुए कहते हैं कि चौबीस अंगुलात्मक प्रकृतिक्षेत्र के छठे भाग के बराबर अर्थात् चार अंगुल ऊँची एवं चौड़ी प्रत्येक मेखलाओं को रखना चाहिए। इस प्रकार ऊर्ध्वक्रम से प्रथम मेखला की ऊँचाई बारह अंगुल, द्वितीय की आठ अंगुल एवं तृतीय की चार अंगुल तथा चौड़ाई सभी की चार अंगुल होगी। यही बारह अंगुलात्मक मेखलामान होता है। इस सम्बन्ध में वासिष्ठी में कहा भी गया है-

प्रथमा मेखला तत्र द्वादशांगुलविस्तृता।
चतुर्भिरंगुलैस्तस्याश्चोन्नतिश्च समन्ततः।।
तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरंगुलमुन्नतः।
अष्टाभिरंगुलैः सम्यग्विस्तीर्णन्तु समन्ततः।।

मेखलामानसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७	
उ.वि.	अं	४	५	७	८	९	९	१०	११	१२	१२	अङ्गुल परिमाण
	य	०	५	०	०	०	७	५	३	०	५	
उ.वि.	अं	६	८	१०	१२	१३	१४	१५	१७	१८	१९	१ म ख. प
	य	०	४	३	०	३	५	७	०	०	०	
१ मे.वि	अं	६	८	१०	१२	१३	१५	१५	१६	१८	१८	पंचमेखलापक्षे विस्तृतिः
	य	०	४	३	०	३	५	७	५	०	७	
	यू	०	०	२	०	२	४	०	६	०	६	
२ मे.वि	अं	५	६	८	१०	११	१२	१३	१३	१५	१५	
	य	०	०	५	०	१	१	१	७	०	६	
	यू	०	५	३	०	३	७	७	४	०	४	
३ मे.वि	अं	४	५	६	८	८	९	१०	११	१२	१२	
	य	०	५	७	०	७	६	४	१	०	५	
	यू	०	३	४	०	४	४	५	१	०	१	
४ मे.वि	अं	३	४	५	६	६	७	७	८	९	९	
	य	०	२	१	०	५	२	७	२	०	३	
	यू	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७	
५ मे.वि	अं	२	२	३	४	४	४	५	५	६	६	
	य	०	६	३	०	३	७	२	४	०	२	
	यू	०	५	६	०	६	१	३	५	०	५	
१ मे.उ	अं	९	१२	१५	१८	२०	२२	२३	२५	२७	२८	पंचमेखलापक्षे उच्छ्रितिः
	य	०	६	४	०	१	०	६	०	०	३	
	यू	०	०	७	०	०	२	४	५	०	५	
२ मे.उ	अं	७	१०	१२	१४	१६	१७	१९	२०	२१	२२	
	य	१	१	३	३	०	५	१	०	४	७	
	यू	५	५	७	२	६	०	४	४	७	७	
३ मे.उ	अं	५	७	९	१०	१२	१३	१४	१५	१६	१७	
	य	३	५	३	६	०	१	२	०	१	४	
	यू	२	२	०	३	४	६	३	३	५	१	
४ मे.उ	अं	३	५	६	७	८	८	९	१०	१०	१२	
	य	४	०	२	१	०	६	४	०	४	०	
	यू	६	६	०	५	३	४	२	२	४	४	
५ मे.उ	अं	१	२	३	३	४	४	४	५	५	६	
	य	६	४	१	५	०	३	६	०	१	३	
	यू	३	३	०	०	२	२	१	१	२	६	

तस्योपरि पुनः कार्यो वज्रः सोऽपि तृतीयकः।
चतुरंगुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः।।

यदि एक ही मेखला बनानी हो तो प्रकृतिक्षेत्र के चतुर्थांश के बराबर अर्थात् छः अंगुल ऊँची-चौड़ी मेखला बनानी चाहिए। जैसा कि पिङ्गलामत में कहा गया है-

एका षडंगुलोत्सेधा विस्तारा मेखला मता।

यदि पाँच मेखला बनाना अभीष्ट हो तो उन्हें छः, पाँच, चार, तीन एवं दो अंश से बनाना चाहिए। इसमें प्रथम मेखला की ऊँचाई नौ अंगुल और चौड़ाई छः अंगुल; द्वितीय मेखला की ऊँचाई सात अंगुल, एक यव और पाँच यूका तथा चौड़ाई पाँच अंगुल; तृतीय मेखला की ऊँचाई पाँच अंगुल, तीन यव और दो यूका तथा चौड़ाई चार अंगुल; चतुर्थ मेखला की ऊँचाई तीन अंगुल, चार यव और छः यूका तथा चौड़ाई तीन अंगुल एवं पञ्चम मेखला की ऊँचाई एक अंगुल, छः यव और तीन यूका तथा चौड़ाई दो अंगुल रखनी चाहिए। प्रथम मेखला से परे नव अंगुल का पञ्चमांश समस्त मेखलाओं में घटाकर उनकी ऊँचाई का विभाग करना चाहिए। समस्त मेखलायें खात से एक अंगुल कण्ठ छोड़कर बनानी चाहिए। जिसका क्रम इस प्रकार है- नव अंगुल का पञ्चमांश एक अंगुल, छः यव, तीन यूका, एक लिक्षा और पाँच बालाग्र होता है। इतने अंश को सभी मेखलाओं में घटाने से नौ अंगुल की ऊँचाई तथा चौड़ाई दो अंगुल के बराबर होती है। मेखला कुण्ड के बराबर की ही होती है। नाभि की चौड़ाई चौबीस के षष्ठांश अर्थात् चार अंगुल तथा ऊँचाई अर्कांश अर्थात् दो अंगुल रखनी चाहिए।।४-५।।

नाभिलक्षणं शालिन्याह-

कुण्डाकारो नाभिरम्भोजसाम्यो वाब्जेऽयं नेनांशहानिर्दलाग्रे।
शेषक्षेत्रे वह्निवृत्तैः समेते स्युर्वै कर्णी केसराः पत्रकाणि।।६।।

अन्वयः- कुण्डाकारः अम्भोजसाम्यः वा नाभिः स्यात्। अयम् अब्जे न स्यात्। (अब्जसमनाभिकरणपक्षे) दलाग्रे इनांशहानिः (कार्यः)। वह्निवृत्तैः समेते शेषक्षेत्रे वै (क्रमेण) कर्णी केसराः पत्रकाणि स्युः।। ६।।

(बलदाभाष्यम्) **कुण्डस्याकार इवाकारो यस्य तथाभूतो वाब्जसाम्यः कमलसदृशो नाभिः स्यात्। अब्जे पद्मकुण्डेऽयं नाभिर्न स्यात्तत्र नाभिरूपायाः कर्णिकायाः सत्त्वात्। तथोक्तं शारदायाम्-**

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभम्।
तत्तत्कुण्डानुकारं वा मानमस्य निगद्यते।।
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभेरुत्सेधता मता।
नेत्रवेदांगुलोपेत ....।। **इति।**

अथ च नाभेः पद्माकाररचनोच्यते। तत्र नाभेर्यो विस्तारः क्षेत्रस्य षडंशरूपस्तदेवास्य क्षेत्रम्। तत्र दलाग्रे दलाग्रनिमित्तमिनांशहानिः क्षेत्रस्य द्वादशांशह्रासः कार्यः शेषक्षेत्रे वह्निवृत्तैस्त्रिभिर्वृत्तैः समेते तत्राद्यं वृत्तं वै निश्चयेन कर्णी कर्णिका द्वितीयं वृत्तं केशराः केशरस्थानं तृतीयं वृत्तं पत्रकाणि पत्राणि स्युरथावशिष्टं दलाग्रमिति। अत्र मदीयं सूत्रम्–

क्षेत्रादेकादशगुणाद्युग्माश्वैरसरामकै–
र्युगनेत्रैर्भजेल्लब्धव्यासार्धान्नाभिमध्यतः ।
कर्णिकाद्यं लिखेद्वृत्तत्रयं वै कर्कटेन तु
शेषं पत्राग्रमाख्यातं नाभिः स्यात्पद्मसन्निभः।।

शारदायाम्–

पद्मे क्षेत्रस्य सन्त्यज्य द्वादशांशं बहिः सुधीः।
तन्मध्यं विभजेद्वृत्तैस्त्रिभिस्तत्र समन्ततः।।
आद्यं स्यात्कर्णिकास्थानं केशराणां द्वितीयकम्।
तृतीयं तत्र पत्राणि मुक्तांशेन दलाग्रकम्।। **इति।।६।।**

ज्योत्स्ना– कुण्डाकार अथवा पद्मकार नाभि का विवेचन करते हुए कहते हैं कि नाभिरूप कर्णिका होने के कारण पद्मकुण्ड के अतिरिक्त समस्त कुण्डों में कुण्ड की आकृति के समान ही नाभि लगानी चाहिए। इस प्रकार चतुरस्र कुण्ड में चार अंगुल चौड़ी एवं दो अंगुल ऊँची नाभि लगानी चाहिए। योनि आदि कुण्डों में क्षेत्रकल्पना द्वारा नाभि लगानी चाहिए। नाभि के सन्दर्भ में शारदातिलक में कहा भी गया है–

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभम्।
तत्तत्कुण्डानुकारं वा मानमस्य निगद्यते।।
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभेरुत्सेधता मता।
नेत्रवेदांगुलोपेत ....।।

पद्माकार नाभिनिर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कुण्ड के मध्य-क्षेत्र में दो अंगुल ऊँची एवं चार अंगुल चौड़ी गीली मिट्टी रखकर उसके चतुरस्र प्रान्त भाग में दल का अग्रभाग जहाँ आकर पड़े वहाँ बारहवाँ अंश (०। २। ५। २) हीन करे। प्रत्येक दिशा में ०। १। २। ५ छोड़ने से द्वादशांश हीन क्षेत्र सम्पन्न दो जायेगा। शेष बचे ३। ५। २। ६ क्षेत्र में परकाल से समान भाग का तीन वृत्त बनावे। इस प्रकार करने से मध्य बिन्दु से पहला वृत्त ०। ४। ७। १ व्यासार्ध का, दूसरा १। १। ६। २ व्यासार्ध का और तीसरा १। ६। ५। ३ व्यासार्ध का सम्पन्न होगा। इनमें से प्रथम वृत्त

में कर्णिका, दूसरे में केसर एवं तीसरे में आठ पत्र का निर्माण करे। पूर्व में छोड़े गये बारहवें अंश में पत्रों का अग्रभाग बनाना चाहिए। जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है- **पत्रे क्षेत्रस्य सन्त्यज्य द्वादशांशं बहिः सुधीः।**
तन्मध्यं विभजेद् वृत्तैस्त्रिभिस्तत्र समन्ततः।।
आद्यं स्यात्कर्णिकास्थानं केशराणां द्वितीयकम्।
तृतीयं तत्र पत्राणि मुक्तांशेन दलाग्रकम्।। ६।।

नाभिसारिणी

कुण्ड संख्या		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
नाभि-क्षेत्रम्	अं	४	५	६	८	८	९	१०	११	१२	१२
	य	०	५	७	०	७	६	४	१	०	१
	यू	०	३	४	०	४	३	५	१	०	१
उच्छ्रिति	अं	२	२	३	४	४	४	५	५	६	६
	य	०	६	३	०	३	७	२	४	०	२
	यू	०	५	६	०	६	१	३	५	०	५
१ व्यासार्द्ध	अं	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१
	य	५	६	०	१	२	४	४	५	६	७
	यू	०	७	४	६	७	०	७	५	५	३
२ व्यासार्द्ध	अं	१	१	२	२	२	३	३	३	३	३
	य	२	५	१	३	५	०	१	३	५	६
	यू	०	६	०	४	६	०	६	२	२	७
३ व्यासार्द्ध	अं	१	२	३	३	४	४	४	५	५	५
	य	७	४	१	५	०	४	६	०	४	६
	यू	०	५	४	२	५	०	१	७	०	२

योनिलक्षणं स्रग्धरयाह-

योनिर्व्यासार्द्धदीर्घा विततिगुणलवादायताब्धिद्विभागो
तुङ्गा तावत्समन्तात्परिधिरुपरिगा तावदग्रेण रम्या।
निम्नं कुण्डं विशन्ती वलयदलयुगेनान्विताऽधोविशाला
मूलात्सच्छिद्रनालान्तरवटरुचिराश्वत्थपत्राकृतिः सा।।७।।

अन्वयः- योनिः व्यासार्धदीर्घा विततिगुणलवाद् आयता, तावत् उपरिगा, तावत् अग्रेण कुण्डं निम्नं विशन्ती वलयदलयुगेन अन्विता, अधः विशाला, मूलात् सच्छिद्रनाला, अन्तरवटरुचिरा (एवम्भूता या) योनिः सा रम्या अश्वत्थ-पत्राकृतिः स्यात्।। ७।।

(बलदाभाष्यम्) **कुण्डेषु यो व्यासार्धः तेन दीर्घा तथा या विततिर्विस्तृतिस्तस्या गुणलवात् तृतीयांशादायता विस्तृता। तथा चाब्धि द्विभागेन विस्तारस्य चतुर्विंशत्यंशेन पारिभाषिकांगुलेन उत्तुङ्गोन्नता मेखलोपरि गतेत्यर्थः। तावत्पारिभाषिकांगुलसम एव समन्तादभितः परिधिर्मेखला यस्याः सा। तावत्पारिभाषिकांगुलसम एवोपरिगार्थादुपरिगा मेखला तावदग्रेणाग्रभागेन निम्नं यथा स्यात्तथा तावदेव कुण्डं विशन्ती प्रविशन्ती यच्च प्राकृत-भूमेर्योन्याग्रोच्छ्रितिरेकादशांगुला तथा मूलोच्छ्रितिर्द्वादशांगुला यथैकांगुला कुण्डे प्रविशन्ती भवेत्तथा विधेयेति। वलयदलयुगेनार्द्धवृत्तद्वयेनान्विता युक्ता अधोविशालार्थादुपरि किञ्चित्सङ्कोचवती मूलादुपस्थाद्योन्यारम्भप्रदेशा-त्सकाशात् योनिमध्येऽग्रं यावत् सच्छिद्रं सरन्ध्रं नालं कमलनालसदृशं यस्यां सा तथान्तरे मध्ये शुचिघृतधारणार्थं वटेन गर्त्तेन रुचिरा सुन्दरा एवंभूता या योनिः सा रम्या रमणीयाश्वत्थपत्राकृतिः स्यात्। तथोक्तं वायवीये-**

मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा।
शोभनां मध्यतः किञ्चिन्निम्नामुन्मीलितां शनैः।।

त्रैलोक्यसारे- दीर्घा सूर्यांगुला योनिस्त्र्यंशोना विस्तरेण तु।
एकांगुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा।।
कुम्भद्वयार्धसहिताऽश्वत्थदलवन्मता ।
अंगुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिक्षमा।। **इति।**

पञ्चरात्रे- अर्कांगुलोच्छ्रिता योनिर्विदध्यात्तावदायता। **इति।।७।।**

योनिसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
दै. या.	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
वि. या.	अं	८	११	१३	१६	१७	१९	२१	२२	२४	२५
	य	०	३	७	०	७	५	१	२	०	२
ऊँ. या. मे.	अं	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३
	य	०	३	६	०	२	४	५	७	०	१

ज्योत्स्ना– प्रकृत श्लोक द्वारा योनि का प्रकार स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः प्रकृतिक्षेत्र के व्यासार्ध के समान अर्थात् बारह अंगुल लम्बा और प्रकृति क्षेत्र के विस्तार के तीसरे भाग के बराबर अर्थात् आठ अंगुल चौड़ा एवं विस्तार के चौबीसवें भाग के बराबर अर्थात् एक अंगुल ऊँचा एक दीर्घ चतुरस्र का निर्माण करे। उसमें छः अंगुल के अन्तर पर अर्थात् मध्य में एक आड़ी रेखा खींच दे। पुनः समग्र चौड़ाई के मध्य में चिह्न देकर पश्चिम-पूर्व रेखा खींचे और मध्य के आगे एक अंगुल और बढ़ा दे। इस प्रकार छः-छः एवं चार-चार अंगुल के चौड़े-चौड़े चार भाग निष्पन्न हो जायेंगे। पहले दोनों कोष्ठकों में दोनों तरफ कर्ण अर्थात् टेढी रेखा देकर उनके मध्य में परकाल रखकर कोष्ठक का प्रान्तसम नाप कर दोनों तरफ घुमाने से दो दीर्घ वृत्त एवं दो लघु वृत्त स्पष्ट हो जायेंगे। छः अंगुल वाले दूसरे कोष्ठक के दूसरे प्रान्तों से संलग्न बढ़ाये गये एक अंगुल के चिह्न तक दो रेखा देकर बाहर के शेष भाग को काट देने से अश्वत्थ अर्थात् पीपल के पत्ते की आकृति वाली योनि का एक अत्यन्त रमणीय चित्र सामने आ जायेगा।

इसे ही सरलतापूर्वक इस प्रकार समझा जा सकता है कि प्रकृतिक्षेत्र की आधी अर्थात् बारह अंगुल लम्बी एवं क्षेत्र का तृतीयांश अर्थात् आठ अंगुल चौड़ी तथा क्षेत्र के चौबीसवें अंश अर्थात् एक अंगुल मेखला से ऊँची एवं एक-एक अंगुल ही चारो ओर तथा एक अंगुल ही योनि से ऊँची परिधि तथा एक अंगुल ही आगे की ओर झुकी हुई एवं उतनी ही कुण्ड में प्रविष्ट होती हुई तथा दो वृत्तार्ध और योनि-आरम्भ से आगे तक मध्य में छिद्रसहित नाल से मुक्त, निम्न भाग स्थूल और ऊर्ध्व भाग कुछ-कुछ संकुचित योनि बनानी चाहिए अर्थात् योनि का अग्रभाग प्राकृत भूमि से

ग्यारह अंगुल और आरम्भिक भाग बारह अंगुल ऊँचा रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में विभिन्न शास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है-

वायवीय पुराण- **मेखलामध्यत: कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा।**
शोभनां मध्यत: कञ्चिन्निम्नामुन्मीलितां शनैः।।

त्रैलोक्यसार- **दीर्घा सूर्यांगुला योनिस्त्र्यंशोना विस्तरेण तु।**
एकांगुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा।।
कुम्भद्वयार्धसंयुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता।
अंगुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिक्षमा।।

पञ्चरात्र- **अर्कांगुलोच्छ्रिता योनिर्विदध्यात्तावदायता।**

शारदातिलक- **स्थलादारभ्य नालं स्याद्योन्या मध्ये सरन्ध्रकम्।। ७।।**

द्वादशांगुलमेखलापक्षे योनिलक्षणमाह-

अथार्कांगुलपक्षे तु मेखलानां दशांगुलैः।
विस्तृता तिथिभिर्दीर्घांगुलिभिर्योनिरिष्यते।। ८।।

अन्वयः- अथ तु मेखलानाम् अर्कांगुलपक्षे दशांगुलैः विस्तृता तिथिभिः अंगुलिभिः दीर्घा योनिः इष्यते।। ८।।

(बलदाभाष्यम्) **अथ तु मेखलानामर्कांगुलपक्षेऽर्थाद्यत्र पारिभाषिक-द्वादशांगुलमिता मेखला रसांशकादुन्नतविस्तृतेत्यादिना चिकीर्षिता तत्र पारिभाषिकैर्दशांगुलैर्विस्तृता तथा तिथिभिः पञ्चदशभिः पारिभाषिकांगुलिभिर्दीर्घा योनिरिष्यते कथ्यत इति। तथोक्तं प्रयोगसारे—**

स्थितां प्रतीच्यामायामे सम्यक् पञ्चदशांगुलाम्।
द्विपञ्चांगुलविस्तारां षट्चतुर्द्व्यंगुलां क्रमात्।
त्रयोदशांगुलोत्सेधां योनिं कुण्डस्य कारयेत्।। **इति।।८।।**

ज्योत्स्ना- अब बारह अंगुल मेखलापक्ष में योनिनिवेशन का प्रकार स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि चार-चार अंगुल चौड़ी एवं चार-चार अंगुल ऊँची आकृति वाली बारह अंगुल की तीन मेखलाओं पर पन्द्रह अंगुल लम्बी और पन्द्रह अंगुल ऊँची तथा दस अंगुल चौड़ी पूर्ववत् योनि का निर्माण करे; जैसा कि प्रयोगसार में कहा भी गया है- **स्थितां प्रतीच्यामायामे सम्यक् पञ्चदशांगुलम्।**
द्विपञ्चांगुलविस्तारां षट्चतुर्द्व्यंगुलां क्रमात्।।
उक्ताश्वत्थदलाकारां निम्नां कुण्डे निवेशिताम्।
त्रयोदशांगुलोत्सेधां योनिं कुण्डस्य कारयेत्।। ८।।

ग्रन्थोपसंहारमाह-

इति मण्डपकुण्डसिद्धिमेनां रुचिरां विट्ठलदीक्षितो व्यधत्त।
अधिकाशिनगर्य्युमेशतुष्ट्यै विबुधः शोधयतादिमां विचार्य्य।।९।।

शशियुगतिथिगण्ये याति शाके वरेण्ये
विभवशरदि रम्ये मासि शस्ये तपस्ये।
शशधरभृति ऋक्षेऽमुष्यपक्षे वलक्षे
कमलनयनतिथ्यां भानुमद्वारवत्याम्।।१०।।

अन्वयः- इति विट्ठलदीक्षितः शशियुगतिथिगण्ये शाके याति (सति) वरेण्ये रम्ये विभवशरदि शस्ये तपस्ये मासि शशधरभृतिऋक्षे अमुष्य वलक्षे पक्षे भानुमद्वारवत्यां कमलनयनतिथ्यां एनां रुचिरां मण्डपकुण्डसिद्धिं उमेशतुष्ट्यै अधिकाशिनगरि व्यधत्त। विबुधः इमां विचार्य शोधयतात्।।९-१०।।

(बलदाभाष्यम्) इतीत्थं विट्ठलदीक्षितः शशियुगतिथिगण्ये एकचत्वारिंशदधिकपञ्चदशशतसंख्ये १४४१ शाके याति गच्छति सति वरेण्य उत्तमे रम्ये रमणीये विभवशरदि विभवेऽब्दे शस्ये प्रशस्ते तपस्ये फाल्गुने मासि शशधरभृतिऋक्षे मृगशिरोभे अमुष्य चन्द्रस्य वलक्षे वलयुक्ते पक्षेऽर्थात्सिते पक्षे भानुमद्वारवत्यां रविवारयुक्तायां कमलनयनो हरिस्तस्य तिथ्यामर्थाद्द्वादश्यां एनां रुचिरां प्रशस्तां मण्डपकुण्डसिद्धिं अधिकाशिनगर्यां काशीपुर्यां यावुमेशौ शिवपार्वती तयोस्तुष्ट्यै प्रीतये व्यधत्त कृतवान्। विबुधः विचार्य इमां शोधयताच्छुद्धां करोत्वित्यर्थः।।९-१०।।

ज्योत्स्ना- ग्रन्थ की समाप्ति पर उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार विट्ठलदीक्षित ने शक संवत् १५४१ में, अत्यन्त उत्तम रमणीय विभवनामक संवत्सर में, फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि, रविवार को आर्द्रा नक्षत्र में अत्यन्त रुचिकर इस मण्डपकुण्डसिद्धिनामक ग्रन्थ की भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिए काशी नगरी में निवास करते हुए रचना की। विद्वानों को चाहिए कि वे इस पर सम्यक् रूप से विचार करते हुए इसमें आवश्यक संशोधन करें।

लेखक का तात्पर्य यह है कि ग्रन्थरचना के क्रम में प्रमादवश यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो विद्वान् आचार्यगण उसे संशोधित कर लिया करें।।९-१०।।

इस प्रकार श्रीमद्विट्ठलदीक्षितविरचित मण्डपकुण्डसिद्धिनामक ग्रन्थ की श्रीनिवास शर्माकृत 'ज्योत्स्ना' हिन्दी व्याख्या में तृतीय अध्याय पूर्णता को प्राप्त हुआ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

परिशिष्टम्

वास्तवकुण्डसिद्धिः

कुण्डावबोधनविधौ परनिर्मितानिस्थूलप्रकारजनितान्यशुभानि बुध्वा।
तेन ज्यकागणितवासनया प्रसङ्गादिक्कुण्डसाधनविधिं प्रवदामि सूक्ष्मम्।। १ ।।

चतुर्भुजं वृत्तमथार्द्धचन्द्रं त्रिकोणकं योनिसमाह्वयं च।
षडस्रमष्टास्रमथाष्टपत्रपद्माह्वयं चापि तु पञ्चकोणम्।। २।।
सप्तास्रकं चेति दशैव कुण्डान्युक्तानि तज्ज्ञैरिह सत्फलार्थम्।
हस्तद्विहस्तादिफलोन्मितानि तत्राङ्गुलैः सिद्धमितैश्च हस्तः।। ३।।

षष्टिव्यङ्गुकैरत्राङ्गुलं व्यङ्गुलकं तथा।
प्रतिव्यङ्गुलषष्ठ्या स्याद्गणितार्थ क्रमस्त्वयम्।। ४।।
तत्रैके हस्तजक्षेत्रफलं जिनकृतेः समम्।
द्वित्र्यादिगुणितं तद्धि द्व्यादिहस्तोद्भवं सदा।। ५।।
फलमेकभवं द्व्यादिगुणितं द्व्यादिहस्तजम्।
न हि द्व्यादिकराणां चांगुलवर्गसमं हि तत्।। ६।।
आयुरारोग्यमैश्वर्य लभते समबाहुके।
सूक्ष्मक्षेत्रफले कुण्डे तद्ध्रासो विषमे भुजे।। ७।।
अज्ञैस्त्र्यस्रादिकुण्डेषु यैर्भुजा विषमाः कृताः।
चतुर्भुजेऽपि विषमा भुजाः किं न कृताश्च तैः।। ८।।
एकद्विघ्नफलाभ्यां ये पदे ते बाहुविश्रुती।
स्यातां समश्रुतौ चाद्ये कुण्डे तुल्यचतुर्भुजे।। ९।।
आसन्नमूलग्रहणाद्भुजो व्यास श्चतुर्भुजे।
एकहस्ते द्व्यादिहस्तेप्येवं साध्यं विचक्षणैः।। १०।।
अष्टघ्नात्फलवर्गाच्च पञ्चभक्तात्पदात्पदम्।
अभीष्टे वर्त्तुले कुण्डे व्यासमानं प्रजायते।। ११।।

आसन्नमूलग्रहणाद्व्यास: सप्ताश्वि सम्मित:।
एकहस्ते तथा द्व्यादिहस्ते स्वस्वफलक्रमात्।। १२।।
द्वात्रिंशद्गुणितात्पञ्चभक्ताच्च फलवर्गत:।
मूलमूलं दलेन्द्वाभे व्यासमानं प्रजायते।। १३।।
आसन्नमूलग्रहणादङ्गुलान्यष्टवह्नय: ।
व्यङ्गुलानि दशव्यासश्चैकहस्तेऽर्धचन्द्रके।। १४।।
समत्रिभुजकुण्डस्य फलवर्गो नृपाहत:।
त्रिभक्तस्तत्पदान्मूलं भुज: स्यादथ तत्कृति:।। १५।।
स्वत्र्यंशसंयुता कार्या व्यास: स्यात्तत्पदं त्विह।
नृपघ्नाद्वा फलाद्वर्गो भैर्हृतस्तत्पदात्पदम्।। १६।।
व्यासमानं भवेत्तत्र चैकहस्ते भुजो भवेत्।
कुण्डेऽङ्गुलादिको व्यासश्चासन्नपदत: किल।। १७।।
फलात्खखाष्टवेदघ्नात्त्यद्रिखाद्रिहृतात्पदम् ।
बाहुरश्वत्थपत्राभे योनिकुण्डे प्रजायते।। १८।।
समत्रिभुजवत्तस्माद्व्यासोऽप्यत्राथ हस्तजे।
कुण्डे भुजो भवेद्व्यासोऽङ्गुलाद्यो गणितेन वै।। १९।।

इत्येको योनिकुण्डप्रकार:

अथवाश्वत्थपत्राभे योनिकुण्डे फलन्तु यत्।
षष्टिवर्गगुणादस्मात् त्रिद्विदन्तैर्हृतात्पदम्।। २०।।
व्यासमानं भवेन्नूनं तद्वर्गार्धपदं भुज:।
हस्तयोनौ व्यासमानमिदं बाहुरयं सदा।। २१।।

इतिद्वितीयो योनिकुण्डप्रकार:

एवं द्वितीयकुण्डस्य फलवर्गोब्धिसंगुण:।
भैर्हृतस्तत्पदान्मूलं भुजमानं प्रजायते।। २२।।
अष्टघ्नाच्च फलाद्वर्गो भैर्हृतस्तपदात्पदम्।
व्यासो भवेद्द्विनिघ्नोऽसौ भुजो व्यासोऽथवा निशम्।। २३।।

आसन्नमूलग्रहणाद्धस्तकुण्डे भुजस्त्वयम्।
व्यासोंऽगुलात्मकश्चायं सम्यक् शिल्पविदोदितः।। २४।।
एवमष्टास्रकुण्डस्य फलं पञ्चाद्रिसंगुणम्।
त्रिपञ्चविहृतं तस्य मूलं व्यासो भवेद्ध्रुवम्।। २५।।
शून्यं द्वाविंशतिस्त्र्यूनषष्ठिः सावयवो गुणः।
तद्गुणो व्यास एवात्र भुज स्यादष्टकोणके।। २६।।
एकहस्ताष्टकोणस्य व्यास आसन्नमूलतः।
भुजश्चायं तथा द्व्यादिहस्तकुण्डे समानयेत्।। २७।।
अथ पद्माख्यकुण्डे तु स्वफलं गुणितं च तत्।
शून्याङ्गवह्निभिर्वह्निवेदसागरभाजितम् ।। २८।।
तन्मूलं व्यासमानं स्यात्ततश्चाष्टास्रवद्भुजः।
एकहस्ते च पद्माख्ये व्यासो बाहुस्तथाङ्गुलैः।। २९।।
अथान्यथाष्टपत्रैस्तु पद्मकुण्डं वदाम्यहम्।
शून्यं षट् सप्त मनवो गुणः सावयवस्त्वयम्।। ३०।।
फलात्तद्गुणितान्मूलं भुजमानं प्रजायते।
सोऽष्टास्रव्यासगुणकोद्धतो व्यासो भवेद्ध्रुवम्।। ३१।।
तथैकहस्तपद्माख्ये भुजः सावयवस्त्वयम्।
व्यासश्चायं द्व्यादिहस्तेप्येवं साध्यं विचक्षणैः।। ३२।।
फलं पञ्चास्रकुण्डोत्थं खनागेन्दुगुणं हृतम्।
नगाभ्रभूमिभिर्लब्धात्पदं व्यासो भवेदिह।। ३३।।
शून्यं पञ्चाग्नयोभूपा गुणः सावयवस्त्वयम्।
तद्गुणो व्यास एवात्र भुजः स्याद्गणितेन वै।। ३४।।
अथैकहस्तपञ्चास्रे आसन्नपदतस्त्विह।
व्यासो भुजो भवेन्नूनमथ सप्तास्रकुण्डके।। ३५।।
फलाच्छून्याम्वरार्कघ्नाद्भूद्विनागहृतात्पदम् ।
व्यासो भवेद्धि सप्तास्रे भुजोऽप्येवं ततः सखे।। ३६।।
शून्यं षड्विंशतिर्भूमिः षड्वाणागुणकोऽस्त्ययम्।
तद्घ्नव्यासोभुजश्चाथ दोर्व्यासौ चैकहस्तजौ।। ३७।।

इति कुण्डगणितप्रकारः

वृत्तकुण्डं निजव्यासदलभ्रमणतो भवेत्।
अर्धचन्द्रं निजव्यासदलवृत्तस्य खण्डकम्॥ ३८॥
त्रिचतुः पञ्चषट्सप्ताष्टास्रकुण्डेषु विस्तृतेः।
अर्धेनादौ लिखेद्वृत्तं कार्याः स्वस्वविभागकाः॥ ३९॥
समाश्चैकैकका रेखाः प्रतिभागं वृतौ ततः।
पूर्णज्यावच्च तेन स्यात्स्वस्वकुण्डास्रकाकृतिः॥ ४०॥
संलग्ना वा भुजावृत्ते देयास्तद्वशतस्त्विह।
स्वस्वास्राकृतिजं कुण्डं यजमानाङ्गुलैर्भवेत्॥ ४१॥
ज्ञाते भुजे वृतावत्र विभागा अप्रयोजकाः।
विभागज्ञानतश्चैवं भुजास्ते चाप्रयोजकाः॥ ४२॥
समत्रिभुजवत्पूर्वं कृत्वां तुल्यत्रिबाहुकम्।
योनिकुण्डे ततो वाहुत्रयमध्याद्भुजाद्वहिः॥ ४३॥
मण्डलार्धत्रयं लेख्यं बाह्वर्धभ्रमणादिह।
एकार्धवृत्तमध्याच्च पार्श्वयोस्तद्भुजाग्रगे॥ ४४॥
कार्ये रेखेऽथ तत्सक्ते चापे त्यक्त्वावशेषकम्।
योनिकुण्डं भवेदाद्यमश्वत्थदलयोनिभम्॥ ४४॥
एवं व्यासार्धमानेन वृत्तं कृत्वा चतुर्भुजम्।
भुजतुल्यभुजैस्तत्र स्वष्टकोणाच्च पार्श्वयोः॥ ४५॥
भुजार्धकेन्द्रतो वृत्तदले बाह्वर्धमानतः।
कार्ये भुजाद्वहिश्चान्यद्योनिकुण्डं च तद्भवेत्॥ ४६॥
पूर्वं व्यासभुजाभ्यां च यथोक्त्याष्टास्रकं लिखेत्।
ततस्तद्वाहुखण्डेन वाह्वर्धात्केन्द्रतः किल॥ ४७॥
वृत्तार्धं वाहुतश्चोर्ध्वं विलिखेदासमन्ततः।
तद्धि तुल्यचतुर्भागं कृत्वा चाद्यतृतीयकौ॥ ४८॥
विभागान्तौ च यौ ताभ्यां तद्वाहुदलमानतः।
भ्रमणान्मत्स्यमुत्पाद्य तन्मुखं वृत्ततो बहिः॥ ४९॥
यदस्ति तद्गते ताभ्यां विभागाभ्यां च रेखिके।
तद्वाहुखण्डतुल्ये च समन्तात्तेन तद्भवेत्॥ ५०॥

अष्टपत्रात्मकं कुण्डं पद्माख्यं पद्मवच्छुभम्।
व्यक्ताव्यक्तोपपरत्त्यैव सिद्धं सूक्ष्मं मयोदितम्।। ५१।।
द्वितीयपद्मकुण्डेऽपि साध्यमष्टास्रकं पुरा।
तद्भुजाद्यन्तचिह्नाभ्यां व्यासार्धाद्भुजमानतः।। ५२।।
वृत्तत्रिभागभ्रमणान्मत्स्यं कृत्वाथ यद्भुजात्।
बहिःस्थितं च यन्मत्स्यखण्डं पत्रं तदेव हि।। ५३।।
एवं प्रतिभुजं पत्रादष्टपत्रोद्भवं किल।
पद्मकुण्डं भवेद्व्यक्ताव्यक्तवासनया परम्।। ५४।।
द्व्यादिहस्तेषु कुण्डेषु स्वस्वोक्तभुजविस्तृती।
कार्ये ताभ्यां यथोक्त्यैव यजमानाङ्गुलैः किल।। ५५।।
स्वस्वास्राकृतिजान्यत्र कुण्डानि प्रभवन्ति च।
द्व्यादिहस्ताख्यकुण्डेषु फलमूलजिनांशकः।। ५६।।
प्रकल्प्य वाङ्गुलं तत्र तैर्यथोक्तप्रकारतः।
एकहस्तोक्तविस्तारभुजाभ्यामेव साधयेत्।। ५७।।
वासनानवबोधेन बहुधा शुष्कपण्डितैः।
कृतं सुस्थूलकुण्डानां साधनं तन्न मे मतम्।। ५८।।

संवादमेत्युक्तफलेन सम्यक् तदेव कुण्डं किल सप्रमाणम्।
नान्यन्मुनीन्द्रोक्तमपीह यस्मात्प्रत्यक्षसिद्धौ नहि वाक्प्रमाणम्।। ५९।।
अन्तर्बहिः कोणभवं तु कुण्डं द्विघ्नं स्वसंख्याकभुजैरलीकम्।
यैरुक्तमष्टास्रमहो कथं तैस्त्र्यब्ध्यस्रकं चापि तथादृतं न।। ६०।।
इमानि कुण्डानि मयोदितानि स्वार्षागमप्रोक्तदिशिस्थितानि।
शुद्धावनौ चाम्बुसमीकृतायां कार्याणि तज्ज्ञैरिह सत्फलार्थम्।। ६१।।
यथोदितक्षेत्रफलस्य साम्यप्रदर्शनार्थं तु ममैष यत्नः।
कुण्डस्य होमार्थमिहाथ तत्रत्योऽन्यो विशेषः सुधियान्यतन्त्रात्।। ६२।।

।। इति कुण्डसाधनप्रकारः।।